शहराती साहित्यः एक बानगी

संकलनः शशिकांत

यह शहर, शहरी जीवन, शहरी संवेदनाओं पर केंन्द्रित उपन्यासों की एक ऐसी फ़ेहरिस्त है जिसे न तो मुकम्मल कहा जा सकता है और न ही प्रातिनिधिक। फिर भी हमने कोशिश ज़रूर की है कि इस विषय पर केंद्रित ज़्यादा से ज़्यादा उपन्यासों को इस फ़ेहरिस्त में शामिल कर पाएँ। एक तरह से कहें तो यह इस विषय पर बनने वाली किसी भी सूची का एक छोटा-सा हिस्सा है। चुनांचे हम आप से उम्मीद करते हैं कि हमारी इस कोशिश में नुक़्स लाख निकालें पर कमियों को दूर करने में हमारे हिस्सेदार भी बनें। जहाँ लगे कि कोई महत्वपूर्ण रचना छूट गई है उसका ब्योरा हमें भेजें क्योंकि इस सूची को जल्दी ही हम इंटरनेट पर भी डालना चाहते हैं ताकि ज़्यादा से ज़्यादा लोग इसका फ़ायदा उठा सकें और यह फ़ेहरिस्त अनवरत बढ़ती भी रहे।

बहुत सारी पुरानी रचनाओं के बारे में कई अहम जानकारियाँ (प्रकाशक, स्थान आदि) नहीं मिल पाईं। फिर भी ऐसी कई रचनाओं को हमने इसलिए शामिल किया क्योंकि इस तरह कम से कम पुरानी बहुत सारी अनुप्लब्ध रचनाओं के बारे में लोग जान तो सकेंगे और मुमकिन है किसी के पास ऐसी नई-पुरानी किताबों की कोई जानकारी वाक़ई मिल ही जाए।

इस ग्रंथलेख के दो हिस्से हैं। पहला हिस्सा 'उपन्यास में शहर' शहर केंद्रित उपन्यासों को तिथिक्रम में प्रस्तुत करता है और दूसरा 'उपन्यासेतर गद्य विधाओं में शहर' लेख की शैली में है।

ः उपन्यास में शहर ः

***भाग्यवती*, श्रद्धाराम फुल्लौरी, 1877**

इसमें उन्नीसवीं सदी के काशी के समाज तथा हरिद्वार के कुम्भ मेले की तस्वीर देखने को मिलती है। कथा की मुख्य पृष्ठभूमि काशी है जहाँ के उच्च मध्यवर्गीय ब्राह्मण समाज की कहानी कही गई है। इन परिवारों के संबंधों की कथा के रूप में इस समाज की आर्थिक स्थिति, आचार-व्यवहार, रस्मोरिवाज, परम्परागत मूल्य-मान्यताओं आदि का विश्वसनीय अंकन किया गया है। इसकी भाषा दिल्ली, आगरा, सहारनपुर, अम्बाला के इर्द-गिर्द की है।

***निस्सहाय हिन्दू*, राधाकृष्ण दास, लेखन 1881, विक्टोरिया प्रेस, बनारस, 1890**

इस उपन्यास में काशी के तत्कालीन वातावरण, घाटों और गलियों का यथार्थवादी वर्णन किया गया है। उपन्यासकार ने दो गुंडों की बातचीत के माध्यम से उनके चरित्र और विशेष प्रकार के लहज़े से युक्त बनारसी बोली का रोचक नमूना पेश किया है।

***परीक्षा गुरु,* लाला श्रीनिवास दास, 1882, पुनर्प्रकाशन, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992**

इसे हिंदी का पहला उपन्यास माना जाता है। इस उपन्यास में पुरानी दिल्ली के गली-कूचों में रहनेवाले एक पुराने परिवार को कथावस्तु का आधार बनाया गया है। इस उपन्यास की कथा दिल्ली की पृष्ठभूमि में उभरते मध्यवर्गीय मूल्यों, व्यापारी वर्ग और पुराने ख़र्चीले सामंती रहन-सहन के बीच निहित तनावों पर केंद्रित है।

***नूतन चरित्र,* रत्नचंद्र 'प्लीडर', 1883**

'हिन्दी प्रदीप' में 1883 में इसके कतिपय परिच्छेद प्रकाशित हुए लेकिन इसका पुस्तकाकार प्रकाशन 1893 में हुआ। यह उपन्यास प्राचीन प्रेमाख्यानों के निकट है, पर इसका परिवेश इसे उपन्यास के निकट लाता है। उपन्यास की अधिकतर घटनाएँ हरथला स्टेशन, दिल्ली और फरीदकोट में घटती हैं, जो वास्तविक भौगोलिक स्थान हैं।

***सद्भाव का अभाव,* बालकृष्ण भट्ट, 1889**

यह अधूरा उपन्यास 'हिन्दी प्रदीप' में फ़रवरी-अगस्त 1889 ई. में प्रकाशित हुआ था। मुग़ल शासन के अंतिम दौर में जब पेशवाओं का शासन समाप्त हो चुका था और ईस्ट इंडिया कम्पनी अपनी पकड़ मज़बूत कर रही थी तब बुन्देलों, पिंडारियों, रुहेलों और जाटों की लूटमार से मध्य भारत में अराजकता का माहौल छाया हुआ था। उपन्यास में इस माहौल से भागकर इलाहाबाद पहुँचे एक विस्थापित परिवार की कथा प्रस्तुत की गई है। उपन्यासकार ने इलाहाबाद की अंग्रेज़ बस्ती 'सिविल लाइंस' का प्रामाणिक वर्णन किया है।

***स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी,* किशोरीलाल गोस्वामी, रचना 1889, प्रथम प्रकाशन 1901**

इस उपन्यास में उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में, जब आरा-जगदीशपुर में 1857 के विख्यात स्वाधीनता सेनानी बाबू कुँवर सिंह की ताल्लुक़ेदारी थी, सामन्ती व्यवस्था की ऐतिहासिक झाँकी प्रस्तुत की गई है। कथाकार ने कुँवर सिंह का चरित्र बखान करने के साथ-साथ तत्कालीन आरा शहर का भी वर्णन किया है।

***चपला वा नव्य समाज चित्र,* किशोरीलाल गोस्वामी, 1903**

बनारस की पृष्ठभूमि में एक नायिका के माध्यम से लगभग फंतासी की शक्ल में लिखी गयी यह कहानी आधुनिक समाज के कथित पतनशील चरित्र की कहानी है पर साथ ही साथ यह एक आधुनिक शहर के रोमांस को भी खड़ा करती है।

***लखनऊ की कब्र वा शाही महलसरा,* किशोरीलाल गोस्वामी, 1906 (?)**

इस ऐतिहासिक उपन्यास में लखनऊ के नवाबी दौर के पतनशील सामन्ती समाज का चित्रण है। उपन्यास का कथानक लखनऊ के नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के अय्याश बेटे नसीरुद्दीन हैदर के काल पर आधारित है।

***नेटाली हिन्दू,* भवानी दयाल, 1920**

इसमें दक्षिण अफ़्रीका में नेटाल में रहने वाले भारतीय प्रवासियों की समस्याओं का चित्रण किया गया है। यह हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें भारतीय प्रवासियों पर अंग्रेज़ उपनिवेशवादियों के शोषण और दमन का वर्णन किया गया है।

***कलकत्ता रहस्य,* पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', 1925**

'मतवाला' के 21 नवम्बर 1925 के अंक में प्रकाशित एक विज्ञापन में 'कलकत्ता रहस्य' के बारे में लिखा गयाः 'यहाँ कलकत्ता में होने वाली एक से बढ़कर एक आश्चर्यपूर्ण, रोमांचकारी, करुण और वीभत्स आदि रसों से पूर्ण तथा चित्ताकर्षक सच्ची घटनाओं का बड़ा ही सुन्दर ख़ाका खींचा गया है। कलकत्ता के अच्छे और बुरे, बड़े और छोटे, ऊँचे और नीचे, अमीर और ग़रीब सभी प्रकार के आदमियों के चित्र चित्रित किये गये हैं'।

***चंद हसीनों के ख़ुतूत,* पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', 1927, पुनर्प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1987**

कलकत्ते की पृष्ठभूमि में हिन्दू युवती और मुस्लिम युवक के प्रेम और बाद के दंगों की कहानी पर केंद्रित इस उपन्यास ने काफी लोकप्रियता अर्जित की थी।

दिल्ली का दलाल, **पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', कलकत्ता, 1927**

दिल्ली का एक नये महानगर के रूप में उदय, अपराध के साथ इसका बनता रिश्ता, चाँदनी चौक की गलियों में स्त्रियों का वेश्याओं के रूप में व्यापार एक महानगर में अपराध के अवश्यंभावी रिश्तों को तो रेखांकित करता ही है, साथ ही तत्कालीन हिंदू-मुस्लिम राजनीति, आर्य समाज वगैरह की गतिविधियों पर भी नज़र डालता है।

दिल्ली का व्यभिचार, **ऋषभचरण जैन, हिंदी पुस्तक कार्यालय, दूसरा संस्करण, 1929**

इस उपन्यास में दिल्ली में फैले व्यभिचार से संबंधित 12 कहानियाँ हैं। लेखक ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुविचारों और कुख्यात की श्रेणी में आनेवाले कर्मों का खुलकर उल्लेख किया है।

कंकाल, जयशंकर प्रसाद, **1930, पुनर्प्रकाशन, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1999**

इसका कथा-क्षेत्र इलाहाबाद, लखनऊ, हरिद्वार आदि शहर हैं। उपन्यास का स्वर उद्देश्यपरक व्यक्तिवादी है परन्तु शैली वर्णनात्मक है। हिन्दू समाज की विसंगतियों और अवैध सन्तानों के यथार्थ को उद्घाटित करने वाले इस उपन्यास में प्रयाग, काशी, हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन जैसे तीर्थस्थानों में धर्म के नाम पर प्रचलित मिथ्याडम्बरों और दुराचारों का यथार्थ अंकन किया गया है।

महाकाल, **श्रीकृष्ण मिश्र, 1930**

हिन्दी का यह पहला उपन्यास है जिसमें दार्जिलिंग और उसके आसपास के पहाड़ी प्रदेश में निवास करने वाले पहाड़ियों के कष्टपूर्ण जीवन को अभिव्यक्त किया गया है।

इन्दौर का रहस्य **(छह भाग), एम. एल. सोजतिया, प्रभात किरण, इन्दौर, 1931-32**

यह उपन्यास 'लन्दन रहस्य' और 'कलकत्ता रहस्य' आदि की तर्ज़ पर लिखा गया है। इसमें ख़ूनख़राबा, मारपीट, व्यभिचार आदि से संबद्ध अपराधप्रधान घटनाओं की बहुलता है।

दिल्ली की शहज़ादी, **रामप्यारे त्रिपाठी, बनारस 1933 (दूसरा संस्करण)**

उस दौर का अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास जो औरंगज़ेब और शिवाजी के संघर्ष तथा शिवाजी और रोशनआरा के कथित प्रेम पर आधारित है।

तितली, **जयशंकर प्रसाद, 1934, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पुनर्प्रकाशन, 1985**

यथार्थ की पीठिका पर आदर्श की स्थापना करने वाले इस उपन्यास में किसानों-मज़दूरों पर होने वाले अत्याचारों, तहसीलदारों-महन्तों के हथकंडों, वेश्याओं की धनलोलुपता आदि के अलावा कलकत्ता के जुआरियों-जेबकतरों के कारनामों तथा वहाँ के निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति का चित्रण किया गया है।

लंदन में भारतीय विद्यार्थी, **राजकुमार मानसिंह, अजमेर, इलाहाबाद, 1935**

'प्राक्कथन' के अनुसार 'इस पुस्तक के लिखने का उद्देश्य यह है कि हिन्दुस्तान से इंग्लैंड जाने वाले विद्यार्थी और उनके अभिभावक वहाँ की स्थिति को समझें, परखें और उससे जीवन-निर्माण में सहायता ले सकें'।

गोदान, **प्रेमचंद, 1935-36**

हिंदी के इस बहुचर्चित कालजयी उपन्यास में गाँव और नगर कथाएँ प्रायः समानांतर रूप से आगे बढ़ती हैं। शायद इसीलिए नलिन विलोचन शर्मा ने इस उपन्यास के स्थापत्य को 'पूर्णतः समानांतर स्थापत्य शैली' की संज्ञा दी है।

दिल्ली का कलंक, **ऋषभचरण जैन, 1936**

इस उपन्यास में लेखक ने दिल्ली में फैले भ्रष्टाचार, वेश्याओं के जीवन, व्यभिचारिणी स्त्रियों के रहस्यमय चरित्र और काली करतूतों, वेश्याओं के कारण समाज में फैलने वाले अपराध आदि का चित्रण किया है।

***शेखर एक जीवनी*, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय, पहला खंड-1939, दूसरा खंड-1944, सरस्वती प्रेस, बनारस, 1939**

बाल मनोविज्ञान को केंद्र में रख कर लिखे गये इस बहुचर्चित उपन्यास की कथा देवरिया, पटना, मद्रास, लाहौर, दिल्ली अदि शहरों से होकर गुज़रती है।

***गिरती दीवारें*, उपेन्द्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1946**

1920-30 के दशकों में स्थित यह उपन्यास जालन्धर के कल्लोवानी मोहल्ले की कहानी है। एक निम्न मध्यवर्गीय मोहल्ला जिसकी घुटनभरी गलियों से बच निकलने की जोड़-तोड़ और निकल न पाने की विवशतायें आदि इस कहानी को पूरा करती हैं।

***शोले*, भैरव प्रसाद मिश्र, 1946**

कानपुर के मज़दूर आंदोलन पर आधारित इस उपन्यास-कथा के माध्यम से साम्यवादी नेतृत्व में मज़दूरों की संगठित शक्ति की पूँजीपति वर्ग पर विजय दिखाई गई है।

***गुनाहों का देवता*, धर्मवीर भारती, 1949, पुनर्प्रकाशन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1983**

आधुनिक हिंदी उपन्यासों में लगभग क्लासिक प्रेम उपन्यास का दर्जा प्राप्त कर चुका यह उपन्यास स्वतंत्रता के ठीक बाद के इलाहाबाद पर लिखा गया है। एक ऐसा दौर जिसमें प्रेम आधुनिकता की परिभाषा से जूझते हुए भी निम्न मध्यवर्गीय रूमानी प्रेम की ट्रैजिक नियति को पाने को बाध्य है और जहाँ शहरी व्यक्तिवाद भी उसे मुक्ति दिला पाने में अक्षम है।

***नदी के द्वीप*, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1951**

लखनऊ, दिल्ली, श्रीनगर आदि से होकर गुज़रता यह उपन्यास मूलतः एक प्रेम कहानी है। स्वयं अज्ञेय ने इसे 'चार संवेदनाओं का अध्ययन' कहा है। ये चार संवेदनाएँ उपन्यास के चार केंद्रीय पात्रों के चरित्र से जुड़ी हुई हैं।

***सूरज का सातवाँ घोड़ा*, धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1952**

इलाहाबाद की ही पृष्ठभूमि पर लिखा यह छोटा उपन्यास अपेक्षाकृत ज्यादा प्रौढ़ माना जाता है। शहर के निम्न मध्यवर्गीय जीवन में प्रेम की उपस्थिति की विडंबनाओं को और आपस में जुड़ीं इन कहानियों के दुख को सिद्धांत का जामा पहनाने के बौद्धिक उपक्रम का मखौल उड़ाता यह उपन्यास लोक कथानक शैली में लिखा गया है।

***बलचनमा*, नागार्जुन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1952**

पटना और दरभंगा पर केंद्रित इस उपन्यास में कृषक मजदूरों पर ज़मींदारों के अत्याचार और शोषण का चित्रण किया गया है। उपन्यास का केंद्रीय पात्र बलचनमा निरक्षर होने के बावजूद राजनीतिक चेतना से संपन्न है। उसे यह चेतना एक उदार कांग्रेसी नेता फूल बाबू के साथ पटना आने और उनके साथ रहने से प्राप्त होती है। फूल बाबू के जेल चले जाने के बाद वह पटना में ही उनके एक मित्र परिवार के यहाँ रहता है, जहाँ उसके अनुभव, सोचने-समझने की क्षमता और राजनीतिक चेतना में भी और प्रखरता आती है। फूल बाबू के जेल से लौटने पर उसे उन्हीं के साथ दरभंगा के कांग्रेस आश्रम में रहने का मौका मिलता है जहाँ वह फूल बाबू तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं के असली चेहरे को देखता है।

***मुट्ठी भर काँकर*, जगदीशचन्द्र, 1952**

इसमें देश विभाजन के बाद पंजाबी शरणार्थियों के सैलाब के फलस्वरूप दिल्ली के आसपास के जाट किसानों के बेघर होने और अपनी पुश्तैनी ज़मीन से उखड़ जाने की त्रासदी का चित्रण किया गया है।

***लेडीज़ क्लब*, मंजुल भगत, 1952**

इसमें महानगरों की अभिजातवर्गीय स्त्रियों के आत्मप्रदर्शन, झूठी ज़िन्दगी, कृत्रिम आचरण और उनके जीवन के अंतर्विरोधों को व्यंजित किया गया है।

***बहती गंगा,* शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र', 1952, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1967**

इस उपन्यास में बनारस शहर को उपन्यासकार ने नायक के रूप में प्रस्तुत किया है।

***बाहर भीतर,* डॉ. देवराज, 1954**

किशोरावस्था के प्रेम के चित्रण के साथ इलाहाबाद विश्वविद्यालय परिसर के जीवन का अंकन इस उपन्यास को एक अतिरिक्त आयाम प्रदान करता है।

***जहाज़ का पंछी,* इलाचंद्र जोशी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1955**

कलकत्ता की बेकारी के इर्द-गिर्द सड़क की ज़िंदगी पर यह उपन्यास लिखा गया है। बेकारी की हताशा से निकलती हुई यह ज़िंदगी कहानी के मुख्य पात्र को जेल, अस्पताल, पागलख़ाने तक की सैर कराती है।

***सागर, लहरें और मनुष्य,* उदयशंकर भट्ट, आत्माराम ऐ ड सन्स, दिल्ली, 1956**

इसमें बम्बई के हाशियाई लोगों की ज़िन्दगी का मार्मिक चित्रण है। उपन्यासकार ने वहाँ के मछुआरों की सामूहिक ज़िन्दगी, समुद्र के साथ उनके संघर्ष और अभावों से लड़ती ज़िन्दगी का साकार चित्रण किया है। इस तरह बम्बई महानगर में उनके जीवन की अदम्य आकांक्षा, उससे उपजती हताशाओं, लोक संस्कृति बनाम शहरी संस्कृति के द्वन्द्व को केन्द्र में रखकर यह उपन्यास बुना गया है।

***उखड़े हुए लोग,* राजेन्द्र यादव, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1956**

शहर कलकत्ता, आर्थिक स्वावलंबन बनाम नयी बनती मर्यादाओं के संघर्ष के बीच स्त्री स्वतंत्रता की खोज और एक महानगर की उसमें सक्रिय भूमिका इस उपन्यास का मुख्य कथ्य है।

***झूठा सच* (भाग-1) *वतन और देश,* यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1958**

विभाजन की त्रासदी पर केंद्रित दो भागों में लिखा गया यह उपन्यास कई परिवारों के साथ-साथ कई शहरों की गाथा कहता है। पहले भाग में विभिन्न पात्रों की वैचारिक प्रतिबद्धताएँ वर्गीय संघर्षों और आपसी जद्दोजहद के साथ लाहौर की गलियों, बाज़ारों और सड़कों के माध्यम से सामने आती है। इसकी कहानी लाहौर, दिल्ली, लुधियाना, अमृतसर आदि शहरों से होकर गुज़रती है।

***शह और मात,* राजेन्द्र यादव, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1959**

बम्बई की पृष्ठभूमि में विकसित यह उपन्यास शहरी आधुनिकता की पड़ताल है। महानगर में एक लेखक, एक पुरुष और एक प्रेमी के तिहरे स्तरों पर जीवन को 'साधने की कला' के दो छोरों पर खड़ी हैं अलग-अलग पृष्ठभूमि से आई दो महिलायें, जो इस कला में कहीं शिकार हैं तो कहीं उसकी सहभागिनी।

***भूले बिसरे चित्र,* भगवतीचरण वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1959**

लखनऊ में स्थित एक कायस्थ परिवार की चार पीढ़ियों की कहानी के माध्यम से इस उपन्यास में युवा पीढ़ी बनाम गुज़रती पीढ़ी और नगरी वैयक्तिकता बनाम पारम्परिक पारिवारिक ढाँचे के आपसी अंतर्द्वन्द्वों को बयान किया गया है।

***बोरीवली से बोरीबंदर तक,* शैलेश मटियानी, 1959**

'बोरीवली से बोरीबंदर तक' बम्बई की 'मुंगरापाड़ा बस्ती' की निम्नवर्गीय ज़िन्दगी की ऐसी कहानी है जो इसके भीतर रहने वाले श्रमिकों, शराब की भट्ठी चलाने वाले दादाओं, कम उम्र की वेश्याओं एवं दलालों की तंग ज़िंदगानियों के बहाने महानगर की तथाकथित आधुनिक रंगीनियों के अंधेरे पहलुओं को सतह पर लाती है। लेखक ने बम्बई की ज़िन्दगी को आधार बनाते हुए 'कबूतरख़ाना' (1960) और 'क़िस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई' (1961) की भी रचना की है। इनके लेखन में मराठी और गुजराती मिश्रित हिन्दी का प्रयोग किया गया है, जिसे 'बम्बइया हिन्दी' के नाम से जाना जाता है।

झूठा सच **(भाग-2)** ***देश का भविष्य*, यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1960**

उपन्यास के इस दूसरे भाग में मुख्यतः दिल्ली और लखनऊ, जालन्धर, मसूरी आदि के माध्यम से नये देश के निर्माण की कहानी कही गयी है जहाँ लाहौर से आये शरणार्थी दिल्ली में पहाड़गंज के उजड़े इलाकों से लेकर कनॉट प्लेस की नई अभिजात ज़िन्दगी के बीच अपनी पहचान बनाने में लगे हैं।

***नया काशी खंड*, बनारस, 1960**

इसमें कहानी के रूप में ईसाई धर्म के प्रभाव में बनारस तथा भारत के अन्य भागों में होने वाले भावी परिवर्तनों का वर्णन किया गया है।

***अजय की डायरी*, डॉ. देवराज, 1960**

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय परिसर की पृष्ठभूमि में एक असफल वैवाहिक जीवन और मध्यवर्गीय सामाजिक-नैतिक मूल्यों के दबाव में प्रेम के त्रासद अंत का चित्रण करने वाले इस उपन्यास में संभवतः पहली बार विश्वविद्यालय परिसर का चित्रण किसी लेखक की चिंता का विषय बनता दिखाई देता है।

***अंधेरे बंद कमरे*, मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1961**

छठे दशक की दिल्ली की पृष्ठभूमि में कलाकारों, लेखकों और पत्रकारों की कनॉट प्लेस और कॉफ़ी हाउस में गहमागहमी तथा दूतावासों की अभिजात्य ज़िन्दगी के साथ-साथ ग़रीब और गंदी कॉलनियों की ज़िन्दगी का भी चित्रण किया गया है। यह उपन्यास एक पत्रकार के नज़रिये से आज़ादी के बाद के वर्षों की बदलती दिल्ली, अख़बारों, कॉफ़ी हाउसों, पुरानी से नई दिल्ली के सफ़र, नई आधुनिकता के बीच फँसे स्त्री-पुरुष संबंधों की कहानी है।

***पचपन खंभे लाल दीवारें*, उषा प्रियंवदा, 1961, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1968**

इस उपन्यास में आधुनिक भारतीय स्त्री के नये जीवन संदर्भों को गहरी सहानुभूति और विविधता के साथ प्रस्तुत किया गया है। दिल्ली विश्वविद्यालय के एक महिला कॉलेज की पृष्ठभूमि में रचित यह कहानी शहर, संवेदनाओं और कार्यों के बीच संघर्षरत एक अकेली स्त्री की दास्तान है।

***लौटे हुए मुसाफ़िर*, कमलेश्वर, राजपाल ऐंड सन्ज़, दिल्ली, 1961**

अपने गृह-शहर मैनपुरी पर केंद्रित इस उपन्यास में लेखक ने देश विभाजन और साम्प्रदायिक मारकाट से वहाँ के आंतरिक माहौल पर पड़ने वाले असर का चित्रण किया है। इन घटनाओं ने मैनपुरी के शहरवासियों को इस तरह गुमराह किया है कि वहाँ का पूरा माहौल ही बदल गया और संवेदनशून्यता हावी होती चली गयी।

***उमराव जान अदा*, मिर्ज़ा हादी अली रुस्वा, अनुवाद - रघुपति सहाय फ़िराक़, संगम पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 1961**

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में बदलते लखनऊ और फैज़ाबाद जैसे शहरों की कहानी एक तवायफ़ की ज़िंदगी के माध्यम से बयान की गई है।

***शहर में घूमता आईना*, उपेन्द्रनाथ अश्क, 1962, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-6, 1972**

लाहौर की पृष्ठभूमि में लिखा गया एक उपन्यास। इसमें लाहौर जो तथाकथित रूप से एक महानगर है, जालन्धर से आये एक व्यक्ति के लिये एक अदम्य आकर्षण का केंद्र है। एक महानगर में व्यक्तिवादी आधुनिकता की तलाश और इस खोज से उपजती हताशायें महानगर के कई अंतर्विरोधों को सामने लाती हैं।

***वे दिन*, *निर्मल वर्मा*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1964**

इसमें एक संवेदनशील भारतीय पात्र के अवलोकन बिन्दु से विश्वयुद्धोत्तर चेकोस्लोवाकिया के हताशा और अवसाद से भरे परिवेश को प्रस्तुत किया गया है। सन् साठ के दशक में तत्कालीन चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग की दुनिया, जहाँ एक हिन्दुस्तानी छात्र अपने अस्तित्व के संकट से गुज़र रहा है।

***जुलूस,* फणीश्वरनाथ रेणु, 1965, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1978**

आँचलिक साहित्य के महत्वपूर्ण लेखक रेणु का यह लघु उपन्यास विभाजनोत्तर पूर्णिया (उत्तरी बिहार) के छोटे से शहर और उसकी बदलती राजनैतिक आबोहवा को दर्शाता है। पूर्वी पाकिस्तान से आए शरणार्थियों की दैनिक जद्दोजहद, बंगाली और बिहारी सामाजिकताओं के साथ-साथ यह उपन्यास पूर्णिया शहर की औपनिवेशिक जगहों और संस्कृतियों की झलक भी पेश करता है।

***मछली मरी हुई,* राजकमल चौधरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966**

यह उपन्यास बदलते शहर की आधुनिकता को उसकी सेक्शुअॅलिटी की बदलती अवधारणाओं से परिभाषित करता है। स्त्री समलैंगिकता या लैस्बियनिज़्म के बहाने आधुनिकता के जेंडर-मूल्यों पर यह उपन्यास प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है। इसमें कलकत्ता के उद्योग जगत की भी तस्वीर प्रस्तुत की गयी है।

***अमृत और विष,* अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966**

लखनऊ नागर जी के उपन्यासों का मुख्य शहर है। अयोध्या, काशी, कानपुर, इलाहाबाद आदि शहर भी उनके उपन्यासों में आते हैं। इन शहरों में विभिन्न जनपदों के निवासी अपनी बोली-बानी के साथ आते हैं। इस उपन्यास में लखनऊ शहर की गलियों और बारादरियों का वर्णन है। इसके अलावा इसमें लखनऊ के शहरी मध्यवर्गीय जीवन और देश की समकालीन मूल्यहीन राजनीति का भी चित्रण है।

***बूंद और समुद्र,* अमृतलाल नागर, 1966, किताब महल, इलाहाबाद, संस्करण-6, 1986**

आज़ादी के बाद के वर्षों में नये बनते-बदलते समाज की आकांक्षाओं, उसके संघर्षों को बुनने के प्रयास में लखनऊ शहर किस प्रकार से इस ज़मीन को तैयार कर रहा था, पारिवारिक संबंधों को शहरी आधुनिकता किस प्रकार पुनर्परिभाषित कर रही थी, यह इस उपन्यास का मुख्य कथ्य है।

***बीस रानियों का बाइस्कोप,* राजकमल चौधरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1966**

बंबई के फ़िल्म जगत की कहानी विश्वसनीय और संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत की गई है। यह 'बदसूरती और बदसूरत सच्चाइयों' की कहानी है। छलकपट, उठापटक और देह व्यापार की दुनिया में सच्चे कलाकारों की असफलता की त्रासदी प्रस्तुत करना उपन्यासकार का लक्ष्य है।

***शहर था, शहर नही था,* राजकमल चौधरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1966**

इस उपन्यास की ज़मीन पटना पर केन्द्रित है और उसी के माध्यम से एक नये उभरते शहरी मध्यवर्ग के आपसी संबंधों, पारस्परिक तनावों की कहानी कही गई है।

***समुद्र में खोया हुआ आदमी,* कमलेश्वर, राजपाल ऐण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1967**

कमलेश्वर अपने उपन्यासों में अकसर शहरी मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं को विषय के रूप में चुनते हैं। मध्यवर्ग का आदमी किस प्रकार आधुनिक सभ्यता की दौड़ में अपना अर्थ खोता जा रहा है, यही इस उपन्यास का कथ्य है।

***अलग-अलग वैतरणी,* शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1967**

लेखक ने इस उपन्यास में यह जताने की कोशिश की है कि नगरीय सभ्यता के साथ विकसित पूँजीवादी समाज में धर्म तथा सामाजिक मूल्य मानव के कर्म के नियामक नहीं रहे हैं बल्कि उनका स्थान अब पूँजी ग्रहण करती जा रही है।

***एक पति के नोट्स,* महेन्द्र भल्ला, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1967**

इसका केंद्रीय विषय आधुनिक दाम्पत्य जीवन है, जो उपन्यासकार की नज़र में नितांत खोखला, बनावटी और अभिनयात्मक हो गया है।

***रुकोगी नही राधिका,* उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1967**

आधुनिक स्त्री की जटिल मानसिकता, भटकाव, पीड़ा और विद्रोह को अंकित करनेवाले इस उपन्यास की कथानायिका राधिका उस आधुनिक स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है जो परम्परागत मूल्यों और नैतिक तथा आचरणगत विधान को स्वीकार नहीं करती।

***कुछ ज़िन्दगियाँ बेमतलब,* ओमप्रकाश दीपक, 1968**

उपन्यास का आरम्भ दिल्ली के एक पिछड़े इलाक़े की ज़िन्दगी से हुआ है, जिसके अंकन में उपन्यासकार ने सूक्ष्म प्रेक्षण क्षमता और गहरी संवेदनशीलता का परिचय दिया है।

***न आने वाला कल,* मोहन राकेश, राजपाल ऐंड सन्ज़, नई दिल्ली, 1968**

इसका परिवेश पहाड़ का एक अनाम शहर और वहाँ का एक मिशनरी स्कूल है। कथानक इस माहौल में एक अध्यापक के इर्द-गिर्द घूमता है जो उस परिवेश की संवेदनशून्यता और पत्नी से संबंध-विच्छेद से ऊबकर त्यागपत्र देने का निर्णय करता है और वहाँ से चला जाता है।

***टोपी शुक्ला,* राही मासूम रज़ा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1969**

राही की पाठशाला — अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय — की बौद्धिक-सामाजिक ज़िन्दगी का दिलकश ख़ाका। नायक बलभद्र नारायण उर्फ़ टोपी शुक्ला साझी ज़मीन, साझी संस्कृति की अनोखी मिसाल है। लेकिन, हिन्दू-मुस्लिम दोनो तरफ़ैन के कठमुल्ले उसको पागल क़रार देते हैं और उसकी ज़िन्दगी मुहाल कर देते हैं। उसका अंत मानीख़ेज़ है, कुछ-कुछ 'टोबाटेक सिंह' या 'तमस' के 'जरनैल' जैसा, फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि टोपी अघोषित 'पागल' है।

***हिम्मत जौनपुरी,* राही मासूम रज़ा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1969**

यह एक ऐसे मुसलमान की गाथा है जो अपने ग़ाज़ीपुर शहर को बेहद प्यार करता है। वह बंबई जाकर भी ग़ाज़ीपुर शहर को नहीं भूलता और मरते समय उसकी जबान पर ग़ाज़ीपुर ही रहता है।

***धूपछाँही रंग,* गिरीश अस्थाना, 1970**

युद्ध और दफ़्तर की ज़िन्दगी का चित्रण। इस वृहदाकार उपन्यास के लगभग तीन सौ पृष्ठों में कलकत्ता के पूँजीपति-उद्योगपति समाज का चित्र सामने आता है।

***वह अपना चेहरा,* गोविन्द मिश्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1969**

इस उपन्यास में लेखक ने अपना दफ़्तरी अनुभव दर्शाया है, जहाँ बॉस से लेकर अधीनस्थ कर्मचारी तक, सब अलग-अलग मुखौटे लगाए बनावटी आचरण के साथ जीते हैं।

***उतरती हुई धूप,* गोविन्द मिश्र, राजपाल ऐंड सन्स, दिल्ली, 1971**

किशोर वय के रोमांस और बाद में यथार्थ से टकराकर उसके चूर होने की कथा है यह उपन्यास जिसमें कॉलेज परिसर में प्रेमियों के भावुकतापूर्ण रिश्ते का चटख चित्रण है।

***पुराना लखनऊ,* अब्दुल हलीम 'शरर', अनुवादक–नूर नबी अब्बासी, नैशनल बुक ट्रस्ट, 1971**

उन्नीसवीं सदी के बहुप्रतिष्ठित पत्रकार, उपन्यासकार और गद्यकार की क़लम से नवाबी लखनऊ ख़ासकर वाजिद अली शाह के वक़्त का ऐतिहासिक ख़ाका। लिबास, खानपान, शालीनता, रहन-सहन, रस्मोरिवाज़, धार्मिक विश्वास और मान्यताएँ, मेले-ठेले, मनोरंजन और खेल-कूद, हथियार, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, शिष्टाचार और इसी प्रकार के विभिन्न सांस्कृतिक पक्षों पर बहुमूल्य जानकारी से लबरेज़।

***एक चूहे की मौत,* बदीउज़्ज़मा, विकास आई प्रिंटर्स, दिल्ली, 1971**

नगरीय युग की नौकरशाही की निर्ममता तथा क्रूरता को उद्घाटित करना इस उपन्यास का उद्देश्य है। यह व्यवस्था आज मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को नष्ट कर रही है। इसकी यांत्रिक प्रक्रिया किसी विशिष्ट जीवन को पनपने नहीं देती। यह प्रक्रिया जीवन में सर्जनात्मकता के स्थान पर विवशता के बोध को अधिक गहराती है।

पत्थरों का शहर, **सुरेश सिन्हा, 1971**

इस उपन्यास में नगरीय नई पीढ़ी के दिशाहीन भटकाव का अनुभूतिपूर्ण चित्रण किया गया है ।

तीसरा आदमी, **कमलेश्वर, 1971, राजपाल ऐंड सन्ज़, दिल्ली, 1982**

उपन्यास में महानगरीय परिस्थितियों में आर्थिक दबाव के कारण तीसरे आदमी के प्रवेश से पति-पत्नी के संबंधों में किस प्रकार दरार पड़ने लगती है और पति ही तीसरा आदमी बन जाता है, इसकी निहायत कचोटनेवाली स्थिति का वर्णन लेखक ने किया है।

कटा हुआ आसमान, **जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, 1971, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981**

बंबई की महानगरीय ज़िन्दगी में प्रवासी मध्यवर्गीय समाज की घुटन भरी विवशता तथा टूटन का विश्वसनीय अंकन हुआ है। मुख्य कथा के माध्यम से उपन्यासकार ने बंबई के परिसर जीवन, कॉलेजों के प्रबंधन में सेठों के नाजायज़ हस्तक्षेप के अलावा बंबई की भागदौड़, फुटपाथों पर बजबजाती ज़िन्दगी, मज़दूर संघों के संघर्ष, सौन्दर्य प्रतियोगिताओं और होटलों की रंगीन ज़िन्दगी आदि का भी चित्रण है।

एकदा नैमिषार ये, **अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972**

इसकी औपन्यासिक दृष्टि में हिन्दू संस्कृति के निर्माण का ऐतिहासिक आयोजन है जो नागर जी के अनुसार नैमिष आन्दोलन की देन है। इसमें नारद मुनि का तुलसी वृन्दाओं के मकड़जाल में फँसना, सोमाहुति भार्गव की अनुपस्थिति में उनके घर पर भृगुवत्स के गुंडों का आक्रमण, लखनऊ में लक्ष्मण जन्मोत्सव का मेला और भार्गव सोमाहुति के द्वारा भारत की नागपत्नी प्रज्ञा की रक्षा आदि अनेक प्रसंग औपन्यासिक कल्पना की मनोरम सृष्टि हैं।

मानस का हंस, **अमृतलाल नागर, 1972, संस्करण-4, राजपाल ऐंड सन्ज़, दिल्ली, 1977**

इस उपन्यास में गोस्वामी तुलसीदास की कल्पित जीवनी के साथ काशी के सांस्कृतिक परिवेश का अत्यंत सजीव चित्रण है।

अंतराल, **मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1972**

स्त्री-पुरुष के बीच पैदा हो जाने वाले अंतराल और उससे मानसिक स्तर पर जूझते रहने की कहानी। संबंधों की सही परिभाषा ढूँढ़ने का प्रयास मोहन राकेश के इस उपन्यास में भी लक्षित होता है।

अपना मोर्चा, **काशीनाथ सिंह, 1972, पुनर्प्रकाशन, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली**

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की राजनीति और छात्र आंदोलन पर आधारित है यह उपन्यास जब सातवें दशक में विभिन्न कारणों से पैदा हुए छात्र असंतोष और 'अंग्रेज़ी हटाओ आन्दोलन' से भारत का शैक्षिक परिसर क्षुब्ध और अशांत हो उठा था।

बीमार शहर, **राजेंद्र अवस्थी, राजपाल ऐंड सन्ज़, दिल्ली, 1973**

अपने इस उपन्यास में लेखक ने बंबई महानगर को 'बीमार शहर' की संज्ञा दी है और वहाँ की ढकी-छिपी सच्चाइयों को अनावृत्त किया है। बंबई की रंगबिरंगी ज़िन्दगी के विभिन्न पहलुओं और वहाँ की समस्याओं, बुद्धिजीवियों के प्रयोग और सामान्य जन की उच्छृंखलताओं की इसमें अभिव्यक्ति हुई है।

तमस, **भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973**

साहित्य अकादमी से नवाज़ी, विभाजन की त्रासदी पर केन्द्रित कृति, जिस पर गोविन्द निहलानी ने मशहूर फ़िल्म भी बनाई। वैसे तो इस उपन्यास में फ़िरक़ापरस्ती के लिए अंग्रेज़ी प्रशासन को ख़ास तौर पर दोषी ठहराया गया है, लेकिन सेठों के कहने पर मस्जिद में सुअर फेंकने की ग्लानि से जूझते एक दलित-दंपति की कहानी भी अद्भुत है, साथ ही वह चरित्र जरनैल भी, जो गाँधीवादियों को खुलेआम शरीकेजुर्म बताता है। घटनाएँ लाहौर, अमृतसर और उसके आसपास की हैं, हिंसा के कुछेक चित्रों और संवेगों की दृष्टिसंपन्नता लेखक की उतनी ही मशहूर कहानी 'अमृतसर आ गया है' की याद दिलाता है।

***गली आगे मुड़ती है,* शिवप्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1973**
लेखक ने अपने चालीस वर्षों के अनुभव, अध्ययन और संवेदना को आधार बनाकर काशी की बेमिसाल संस्कृति को शब्दों में ढाला है।

***दिल एक सादा कागज़,* राही मासूम रज़ा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973**
यह उपन्यास ज़ैदी विला के उस भूत की कहानी है जिसके कई नाम थे — रफ़्फ़न, सय्यद अली, रफ़अत ज़ैदी, बाग़ी आज़मी। यह ज़ैदी विला, ढाका और बंबई के त्रिकोण की कहानी है...। यह उपन्यास बंबई के उस फ़िल्मी माहौल की भी कहानी है जिसकी भूलभुलैया आदमी को भटका देती है और वह कहीं का नहीं रह जाता।

***लाल टीन की छत,* निर्मल वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1974**
एक बड़ी होती लड़की और शिमला की पृष्ठभूमि, दोनों के एक-दूसरे को खोजने की प्रक्रिया इस उपन्यास में सामने आती है।

***मुर्दाघर,* जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1974**
शहरीकरण के संदर्भ में विकसित होती वेश्यावृत्ति के कारणों तथा उसके विभिन्न प्रभावों पर गहराई से प्रकाश डालती कृति। उपन्यास में वर्णित बाज़ार बंबई में एक रेलवे लाइन के किनारे स्थित है जहाँ झोपड़पट्टी में रहनेवाली स्त्रियों की फटेहाली और देह व्यापार करने की बाध्यता को दर्शाया गया है।

***मेरी तेरी उसकी बात,* यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1974**
इसमें 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में उत्तर भारत के छात्रों की भूमिका का लेखक ने काफ़ी सटीक चित्रण किया है।

***काली आंधी,* कमलेश्वर, राजपाल ऐ ड सन्ज़, दिल्ली, संस्करण-3, 1974**
भोपाल की चुनावी राजनीति और स्त्री की उसमें भूमिका के माध्यम से यह उपन्यास भारतीय नगरों की ऐसी वास्तविकता बयान करता है जहाँ जाति एवं भाषा की राजनीति अभी भी इतनी ताक़तवर है कि शहरी आधुनिकता का ऐसे 'बंधनों' से ऊपर उठ चुकने का दावा खोखला ही दिखता है।

***छाको की वापसी,* बदीउज़्ज़माँ, 1975, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली**
इस उपन्यास की कथाभूमि फल्गु नदी के किनारे बसा बिहार का एक शहर गया है। इसके माध्यम से उपन्यासकार ने विभाजन और भारतीय मुसलमान का देशज व निम्नवर्गीय विमर्श रचा है। विभाजन की छाया में यह उपन्यास शहर में आये नये शरणार्थियों को गया, कलकत्ता से लेकर ढाका तक की सैर कराता है और उनके अनुभवों को तराशता है।

***नरक दर नरक,* ममता कालिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1975**
मौजूदा सामाजिक व्यवस्था जिसमें मध्यवर्गीय शिक्षित युवकों को अपनी सारी प्रतिभा, ईमानदारी, मेहनत और प्रथम श्रेणी की डिग्रियों के बावजूद रोज़गार के लिए दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं यही इस उपन्यास की चिंता का मुख्य विषय है। साथ ही, बंबई के शैक्षणिक वातावरण में व्याप्त शिक्षकों और अधिकारियों की गुटबंदी, भ्रष्टाचार, अध्यापकों के प्रति अधिकारियों की साज़िश, व्यवस्था के प्रति छात्रों के असंतोष, अध्यापकों की घुटनभरी ज़िन्दगी आदि का भी चित्रण है।

***भ्रम भंग,* देवेश ठाकुर, 1975**
मध्यवर्गीय युवक के अपने परिवेश से संघर्ष तथा पारिवारिक संबंध विषयक मूल्यों के 'भ्रम भंग' का अंकन करते हुए कथाकार ने बंबई के कॉलेज की राजनीति, कैम्पस के बाहर किसी शिक्षक की होटल के कमरे की ज़िन्दगी, लोकल ट्रेनों और बसों की भीड़भाड़ में धक्कामुक्की करते रोज़ कॉलेज जाने और वापस लौटने आदि का यथार्थ चित्रण किया है।

***अपने लोग*, रामदरश मिश्र, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1976**

उपन्यास का कथानायक दिल्ली के किसी कॉलेज की नौकरी छोड़कर गोरखपुर के एक कॉलेज में रीडर का पद इस उद्देश्य से स्वीकार करता है कि वह पुनः अपने गाँव और बचपन से परिचित शहर की ज़िंदगी से जुड़ सके। पर क़स्बाई मानसिकता वाले अध्यापक, मानवीय मूल्यों और संवेदना से रहित डॉक्टर, वकील, कॉफ़ीहाउसी कवि और छद्म अपरिपक्व बुद्धिजीवी समाज से होती टकराहटें उसे पग-पग पर आहत करती हैं।

***यह भी नहीं*, महीप सिंह, राजपाल ऐण्ड सन्स, दिल्ली, 1976**

इस उपन्यास का केंद्रीय विषय है बंबई के महानगरीय परिवेश में स्त्री-पुरुष के बीच असफल और तनावपूर्ण संबंध। साथ ही इसमें बंबई की शिक्षण संस्थाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार, षडयंत्र और धांधली का विस्तार के साथ वर्णन है।

***मकान*, नारायण बनर्जी, 1976**

एक अनाम शहर में 'घर' या शरण की तलाश इस उपन्यास का केन्द्रबिन्दु है। यहाँ स्थानीयता को 'झाड़वाली गली', 'मुन्नीलाल रस्तोगी लेन', 'मस्जिद के पास टीले पर बनी बस्ती' जैसे निशानों के माध्यम से चिन्हित किया गया है।

***अनारो*, मंजुल भगत, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 1977**

इस उपन्यास में लेखिका ने महानगर दिल्ली में मध्यवर्गीय परिवारों में चौका-बर्तन कर गुज़र-बसर करने वाली स्त्रियों का चित्रण किया है।

***नंगा शहर*, भीमसेन त्यागी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977**

इसमें एक फ़ंतासी के माध्यम से आधुनिक पूँजीवादी तंत्र की भयावहता, पूरे समाज पर उसकी दानवी जकड़, सत्ता पर अखंड अधिकार बनाए रखने की खूनी लिप्सा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर उसका सम्पूर्ण अधिकार तथा सम्पूर्ण मानव समाज के ख़िलाफ़ उसके इस्तेमाल की राक्षसी प्रवृत्ति और क्षमता का चित्रण किया गया है।

***कटरा बी आरज़ू*, राही मासूम रज़ा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978**

इलाहाबाद में हिंदुओं और मुसलमानों का एक मिलाजुला मुहल्ला जहाँ आर्थिक दृष्टि से विपन्न, निम्न वर्ग के कम पढ़े-लिखे, सीधे-सादे, छल-प्रपंच से रहित हिन्दू-मुसलमान रहते हैं। यहाँ के निवासियों की आरज़ू और तमन्ना छोटी-छोटी और मानवीय हैं पर वे चूर-चूर हो जाती हैं। साथ ही इसमें आपातकाल पर भी बहुत तीखा और कलात्मक व्यंग्य है।

***नगरपुत्र हंसता है*, धर्मेन्द्र गुप्त, प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली, 1978**

महानगरीय जीवन की विसंगतियों तथा गाँव से महानगर में आए छुटभैये बुद्धिजीवियों के भटकाव की कहानी। इसके अलावा लेखक का एक अन्य उपन्यास 'रिश्ते शहर के' भी है।

***चितकोबरा*, मृदुला गर्ग, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1979**

इस विवादास्पद उपन्यास के केंद्र में एक संवेदनशील लेखिका की नीरस, प्रेरणारहित, ऊब भरी, पति और बच्चों वाली दुनिया में सर्जनात्मकता की प्रेरक शक्ति के रूप में एक व्यक्ति के प्रवेश के फलस्वरूप उत्पन्न आवेगात्मक, नैतिक और रचनात्मक तूफ़ान को पिरोया गया है।

***एक चिथड़ा सुख*, निर्मल वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979**

नगरीय संवेदनाओं की विविध अभिव्यक्तियों के लिए मशहूर निर्मल वर्मा के इस उपन्यास में प्रवासी थियेटर कर्मियों की गतिविधियों और उनकी नज़र से दिल्ली का वर्णन है। इसका कथानक एक किशोर की आँखों से आगे बढ़ता है जहाँ संबंधों की गहराई पर सवालिया निशान उठते हैं।

***कुरु कुरु स्वाहा*, मनोहर श्याम जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980**

बंबई की बौद्धिक, फ़िल्मी दुनिया, शहर के आप्रवासियों का कोलाज। महानगरीय जीवन — जिसका उदाहरण बंबई है, जहाँ सिनेमा, अपराध, सेक्स आदि के अलग-अलग संसार हैं — की विसंगतियों, अनिश्चितताओं, नैतिक

मूल्यों तथा वहाँ के रहन-सहन, भागदौड़, रहस्यमयता, देह व्यापार, षड्यंत्र आदि की प्रस्तुति ही उपन्यास का केंद्रीय विषय है।

***अँधेरे से परे*, सुरेन्द्र वर्मा, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1980**

दिल्ली में बेरोज़गारी व पारिवारिक-मनोवैज्ञानिक उलझनों से जूझते एक अनमने युवक की कच्ची-पक्की कहानी, जो अंततः विज्ञापन की दुनिया में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दे जाता है।

***बसन्ती*, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1980**

दिल्ली के हाशिये पर बसे मज़दूरों की ज़िंदगी पर एक स्त्री के माध्यम से यह उपन्यास न सिर्फ़ इन मज़दूरों की ज़िंदगी को हमारी चेतना के मध्य में लाने का प्रयास करता है, बल्कि लगातार भटकते, भगाये जाते लोगों का जीवन भी अंकित करता चलता है। इनके संघर्ष एक ऐसी दुनिया की रचना करते हैं जो इसी शहर का हिस्सा होते हुए भी इससे बाहर हैं।

***अनायास*, योगेश गुप्त, 1982**

आर्थिक तंगी से जुड़ी एक छोटी-सी घटना से मध्यवर्गीय परिवारों में उत्पन्न हो जानेवाले तनाव का प्रभावशाली वर्णन।

***लेकिन दरवाज़ा*, पंकज बिष्ट, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982**

दिल्ली पर केंद्रित नए शिल्प में लिखा गया एक ऐसा संस्मरणात्मक उपन्यास जिसमें शहर का जनजीवन, यहाँ की आबोहवा, कला, साहित्य, संस्कृति, नाटक-रंगमंच, विश्वविद्यालय आदि ही नहीं बल्कि यहाँ की पत्रकारिता की दुनिया, बाज़ार, कनॉट प्लेस, सिनेमाघरों, कला दीर्घाओं की गतिविधियों आदि को भलीभाँति दर्शाने की कोशिश की गयी है।

***बिना दरवाज़े का मकान*, रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984**

घरों में चौका-बर्तन करनेवाली एक स्त्री की आँखों से आज की महानगरीय ज़िन्दगी को पहचानने की कोशिश।

***बिना दरवाज़े का मकान*, रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984**

उत्तर प्रदेश के गोरखपुर शहर के इर्द-गिर्द मंडराते इस उपन्यास की कथा में दिखलाया गया है कि क़स्बाई शहरों की अपनी एक वास्तविकता होती है। उनमें गाँव और शहर की कई विशेषताएँ मिलकर एक अलग ही संस्कृति का निर्माण करती हैं।

***तलघर*, महेश्वर, 1984**

इस उपन्यास में कलकत्ता की पृष्ठभूमि में निम्न-मध्यवर्गीय जीवन की मजबूरियों और त्रासद स्थितियों का चित्रण किया गया है।

***मैं और मैं*, मृदुला गर्ग, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984**

उपन्यास में एक धूर्त और बेईमान लेखक द्वारा एक नई लेखिका के शोषण की कहानी कही गई है। दिल्ली की साहित्यिक ज़िन्दगी पर आधारित इस उपन्यास में महानगरीय परिवेश में लेखक समाज की चारित्रिक विकृतियों को उघाड़ने का प्रयास किया गया है।

***घास गोदाम*, जगदीशचन्द्र, 1985**

इसमें दिल्ली के आसपास के किसानों के अपनी जड़ों से कटने और बरबाद होने की कथा प्रस्तुत की गई है। दिल्ली के विस्तार के फलस्वरूप किसानों की ज़मीनें बिक जाने से उनके हाथों में ढेर सारे पैसे तो आ गये पर जीविका के नये मार्गों में प्रशिक्षित न होने के कारण वे किसी सार्थक नयी ज़िन्दगी की शुरुआत न कर सके।

***करवट*, अमृतलाल नागर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985**

इसका कथाक्षेत्र भी लखनऊ का चौक क्षेत्र और कलकत्ता है। इतिहास और कल्पना की जुगलबंदी से उपन्यासकार

ने एक ऐसी कथा गढ़ी है जिसके कारण यह उपन्यास अंग्रेज़ों के आज्ञाकारी शिक्षित वर्ग के समाज सुधार की असलियत को जगज़ाहिर कर देता है। उपन्यास के उत्तरार्ध में रूढ़िवाद से नयी पीढ़ी का संघर्ष तेज़ होता है।

***झीनी-झीनी बीनी चदरिया*, अब्दुल बिस्मिल्लाह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986**

यह उपन्यास एक ओर जहाँ बनारस के बुनकर समाज का एक दस्तावेज़ है, वहीं उस जीवन का जीता-जागता कलात्मक बिम्ब भी है। इसमें धार्मिक संकीर्णता और सम्प्रदायवाद का जमकर विरोध किया गया है।

***दूसर घर*, रामदरश मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986**

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने अहमदाबाद का परिवेश लिया है जहाँ ग़रीबी और बेरोज़गारी की वजह से उत्तर प्रदेश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा जीविका की तलाश में जाता है। इनमें मिलों में काम करने वाले मजदूर, फ़ुटपाथ पर चाय-पान का धंधा करने वाले दुकानदार, होटलों में चौका-बर्तन करने तथा नाश्ता-चाय देनेवाले किशोर और कॉलेजों में कार्यरत हिंदी अध्यापक, गुंडे, धंधेबाज़, हिंदू-मुसलमान, ब्राह्मण-शूद्र सभी तरह के लोग होते हैं।

***सूखा बरगद*, मंज़ूर एहतेशाम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986**

भोपाल के एक मुस्लिम परिवार की कहानी पर केंद्रित इस उपन्यास का मूल कथ्य है विभाजन से आज तक उपजी या उपजती आई भारतीय मुसलमान की सोच, जो न तो कट्टर मुसलमान है, न ही पूरी तरह पश्चिमीकृत, बेगाना और विश्व नागरिक।

***पहला पड़ाव*, श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1987**

इसका केंद्रीय विषय है बड़े शहरों में बनने वाले विशाल भवनों के इर्दगिर्द की ज़िन्दगी, जिसमें इन भवनों के प्रबंधक, ठेकेदार, इंजीनियर, सेठ और मुंशी मज़दूरों का शोषण करते हैं और भ्रष्टाचार की ज़िन्दगी जीते हैं

***नीला चाँद*, शिवप्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988**

इसमें लेखक ने भारतीय इतिहास के 'मध्यकाल की काशी' को देखने का प्रयास किया है। इसके लिए उन्होंने 1060 ई. के आसपास की काशी की ज़िंदगी का चयन किया है।

***अंततः*, सुरेन्द्र तिवारी, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989**

यह उपन्यास कलकत्ता महानगर की पृष्ठभूमि में एक निम्नमध्यवर्गीय युवक की भटकन और उत्पीड़न की कथा है।

***रात का रिपोर्टर*, निर्मल वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989**

इमरजेंसी के दिन, दिल्ली की पृष्ठभूमि, एक शासन का आतंक और एक नये बनते महानगर का आतंक, दोनों मिलकर जिस दुनिया की सृष्टि करते हैं, उसकी कहानी कहता है यह उपन्यास।

***पीढ़ियाँ*, अमृतलाल नागर, राजपाल ऐंड सन्ज़, 1990**

लेखक के एक अन्य उपन्यास 'करवट' के साथ यह उपन्यास एक गुच्छ बनता है। इन दोनों उपन्यासों का कथाक्षेत्र मुख्यतः लखनऊ है, लेकिन यह कलकत्ता से लेकर बंबई तक फैला हुआ है।

***एक ज़मीन अपनी*, चित्रा मुद्गल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1990**

इसका केंद्रीय कथ्य बंबई के महानगरीय परिवेश में विज्ञापन-जगत के ग्लैमर, मूल्यहीन प्रतियोगिता, तिकड़म, देह-व्यापार आदि के बीच प्रस्तुत 'नारी विमर्श' है।

***मुझे चाँद चाहिए*, सुरेन्द्र वर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993**

शाहजहाँपुर से दिल्ली और बम्बई तक छोटे से लेकर बड़े शहरों की यात्रा की कहानी जो उपन्यास की मुख्य पात्र की अपनी अस्मिता की खोज का आख्यान भी है। शहर के सांस्कृतिक गलियारों-गतिविधियों में दिलचस्पी रखनेवालों के लिए मनोरंजक शैली में लिखा गया एक ज़रूरी उपन्यास जो रंग-संस्कृति एवं फ़िल्म-संस्कृति की दुनिया में अनदेखे झरोखे खोलता है।

***दिलो-दानिश,* कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1993**

आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व के दिल्ली के अभिजात समाज के पारिवारिक और नैतिक द्वंद्व का चित्रण। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने दिल्ली की मूल संस्कृति की पहचान प्रस्तुत की है। इस उपन्यास की भाषा करारी हिन्दुस्तानी है, जो अरबी-फ़ारसी शब्दों से लबरेज़ है। इसमें दिल्ली में बोले जानेवाले ठेठ देसी शब्दों का मिश्रण कर भाषा को बहुत जीवन्त बना दिया गया है।

***दिल्ली दूर है,* शिवप्रसाद सिंह, राजपाल ऐ ड सन्ज़, दिल्ली 1993**

दिल्ली पर आधारित इस उपन्यास में दिल्ली की धार्मिक-सांस्कृतिक टकराहटों और समन्वय का अंकन किया गया है। इसमें जज़िया टैक्स के बहाने मुस्लिम अमलों के हिन्दुओं पर अत्याचार और धर्म-परिवर्तन के प्रसंग लेखकीय सहानुभूति के साथ प्रस्तुत किये गये हैं।

***यह जो दिल्ली है,* प्रकाश मनु, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993**

राजधानी दिल्ली के पत्रकारिता संसार की वास्तविकताओं का दस्तावेज़ है यह उपन्यास। पत्रकारिता की दुनिया में व्याप्त मूल्यहीनता, नये पत्रकारों का शोषण और एक ईमानदार पत्रकार का इस परिवेश की विद्रूपताओं से संघर्ष इस उपन्यास में बहुत संजीदगी के साथ सामने आता है।

***पेशावर से बम्बई तक,* ए.के. हंगल, राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1994**

प्रगतिशील कार्यकर्ता, मशहूर रंगकर्मी, फ़िल्मकर्मी की कलम से अपनी तक़सीम के आर-पार फैली लंबी पारी का निहायत चुस्त, मुख़्तसर पर दिलचस्प संस्मरण, जिसमें कराची भी है, और बंबई के लोग-बाग, गली-कूचे सब कुछ।

***बलराज साहनी-संतोष साहनी समग्र,* बलदेवराज गुप्त (सं.), हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, 1994**

ख़ास तौर से 'पूरब के नाई' खंड में 'दिल्ली' और 'पेशावरी दिल' नामक कहानियाँ, जोकि 1930 के दशक की परिवहन व्यवस्था और संस्कृति पर दिलचस्प रौशनी डालती हैं।

***गंजी,* मंजुल भगत, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 1995**

इसमें लेखिका के ही एक अन्य उपन्यास 'अनारो' के विषय का विस्तार है, जिसकी नायिका अनारो की पुत्री है जो अपने परिश्रम, विवेक और लगन से अपने सहानुभूतिपूर्ण विश्वास का इज़हार करती है।

***हमज़ाद,* मनोहर श्याम जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996**

यह एक भिन्न कोटि का उपन्यास है जो वैश्विक स्तर पर बढ़ते बाज़ारवाद की मनोवृत्ति को दर्शाता है। लाहौर से बम्बई तक की यात्रा, फ़िल्मी दुनिया के बहाने व्यक्तिगत संबंधों की गलाज़त उर्दू में बयान की गई है।

***वैश्वानर,* शिवप्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996**

काशी पर केंद्रित लेखक का यह तीसरा वृहदाकार उपन्यास है। इसमें उन्होंने काशी के वैदिककालीन रूप को प्रस्तुत किया है।

***पीली आँधी,* प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996**

इसमें कलकत्ता के महानगरीय परिवेश का बहुत ही विश्वसनीय चित्रण किया गया है। मारवाड़ियों के राजस्थान से कलकत्ता आकर उद्योगपतियों में रूपांतरित होने, उनके बनने ओर बिगड़ने, एक नये प्रकार की संस्कृति को जन्म देने आदि का अंकन उनके उपन्यासों में देखा जा सकता है।

***आवाज़ें बल्का बस्ती की,* मनमोहन ठाकौर, जनवाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1998**

आगरा के मास कल्चर को स्पर्श करता है यह उपन्यास। इसे पढ़ते हुए पाठक अपने अतीत में जाता है, कथन की शैली में मज़ा है, एकदम वार्ता जैसा। आंचलिकता तो है लेकिन एक ख़ास गली, एक मकान, एक कूचे का अपना ख़ास चरित्र और भाषा नहीं है। 'बल्का बस्ती' इस विस्मृति में एक मुहल्ले का पुनर्स्थापन है।

***चक्रव्यूह,* श्रवण कुमार गोस्वामी, 1988**

एक बेनाम शहर के विश्वविद्यालय के जीवन को, उसमें लगे हुए घुन को, भ्रष्टाचार, षड्यंत्र और गंदी राजनीति से दूषित अशैक्षिक परिवेश को केंद्रीय विषय के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

***कलिकथा वाया बाईपास,* अलका सरावगी, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा, 1998**

साहित्य अकादेमी पुरस्कार से पुरस्कृत इस कृति में कलकत्ता में मारवाड़ी परिवार में जन्मे किशोर बाबू के नज़रिये से कथा कही गयी है। इसमें मारवाड़ी परिवार की पाँच पीढ़ियों की संघर्ष-कथा प्रस्तुत करते हुए कलकत्ता का पूरा इतिवृत्त उपलब्ध करा दिया गया है। इसमें महानगरों के साथ-साथ पूरे उत्तरी भारत के छोटे-बड़े शहरों और क़स्बों के परिवेश में भी भारतीय जीवन के बहुआयामी यथार्थ का चित्रण किया गया है।

***दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता,* सुरेन्द्र वर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998**

बंबई महानगर और उससे जूझते दो लोगों की नियति, जहाँ एक पुरुष वेश्यावृत्ति को बाध्य है तो दूसरा अपराध की दुनिया में डूबने को। साथ ही इसमें बंबई की बाज़ारवादी अर्थसंस्कृति में बढ़ते हुए अपराध और सेक्स का चित्रण किया गया है।

***हमारा शहर उस बरस,* गीतांजलि श्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998**

उपन्यास में एक बेनाम शहर है, जहाँ एक मठ और एक विश्वविद्यालय है। और इसमें बाबरी मस्जिद ध्वंस के इर्द-गिर्द पनपी साम्प्रदायिकता का चित्रण किया गया है।

***कालकथा* (दो खंड), कामतानाथ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.-1998**

इस पीरियड नॉवेल के कई पात्रों की लीला-भूमि कानपुर है। इसके अलावा उपन्यास में लखनऊ में नवाबी शान से रहने वाले उच्च-मध्यवर्गीय लोगों के जीवन का चित्रण भी है। इसके लिए उपन्यासकार ब्योरों की बारीकियों में जाता है और इसीलिए पात्रों और परिस्थितियों को सजीव रूप में उभार पाता है।

***बम्बई दिनांक,* अरुण साधु, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1999**

प्रमुख पात्रों के नाम पर उप-शीर्षकों में विभाजित एक नये औपन्यासिक शिल्प में लिखे गये इस उपन्यास में मुंबई महानगर की सुबह-शामों और उनके दरमियान पलती-मिटती इन्सानी ज़िन्दगी के अविस्मरणीय चित्रों और विविध चेहरों को उकेरने की कोशिश की गयी है।

***आवाँ,* चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 1999**

इसका केंद्रीय विषय एक नौजवान लड़की, नमित, का जीवन संघर्ष है, जो एक घुटन भरे मध्यवर्गीय परिवार में जन्मती-बढ़ती है और महानगर के जलते हुए परिवेश में अपने को संघर्ष के लिए तैयार करती है।

***ग़ालिब छुटी शराब,* रवीन्द्र कालिया, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2000**

एक 'पीते-पीते' लेखक की कलम से निहायत आत्मपरक संस्मरण, जिसमें जालंधर, दिल्ली और फिर इलाहाबाद की साहित्यिक, लेखकीय संस्कृति व माहौल का दिलकश लेखाजोखा पेश किया गया है।

***समय सरगम,* कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000**

वृद्ध जीवन के एक संवेदनशील मानस की नज़र से देखा हुआ चित्र। इसमें वृद्धजनों की त्रासद स्थिति, उनकी अस्थिर मानसिकता, विवशता, अकेलापन, बहू-बेटों की उदासीनता और क्रूरता, बचा-खुचा भी छिन जाने की आशंका आदि का अंकन गहरी अनुभूति के साथ किया गया है। एकाकी जीवन बिताने वाली एक स्त्री और एक पुरुष का एकसाथ जीवन बिताने का विकल्प मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

***लखनऊ मेरा लखनऊ,* मनोहर श्याम जोशी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2000**

संस्मरण शैली में लिखी गयी इस कृति में लेखक ने लखनऊ शहर, लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्र जीवन के अपने अनुभव, वहाँ की तत्कालीन वामपंथी छात्र राजनीति, लेखक समाज, लखनऊ लेखक संघ की साहित्यिक

गतिविधियों बौद्धिक बहस-मुहाबिसे, पढ़ाई-लिखाई, प्रेम-रोमांस, दोस्ती-यारी आदि को बड़े ही रोचक और खिलंदड़ अंदाज़ में अभिव्यक्त किया है।

***फूल इमारतें और बन्दर,* गोविन्द मिश्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000**

दिल्ली के परिवेश में दफ़्तरशाहों और राजनेताओं के जीवन के छद्म और दफ़्तर तथा राजनीति के खेल का चित्रण।

***रास्तों पर भटकते हुए,* मृणाल पांडे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000**

दिल्ली के ही परिवेश में आधुनिक उपभोक्तावादी युग में मानवीय संबंधों की मृत्यु, सर्वव्यापी भ्रष्टाचार, धन और सत्ता की दौड़ में मानवीय मूल्यों को बिल्कुल दरकिनार करने वाले डॉक्टरों, उद्योगपतियों, राजनेताओं और पत्रकारों का वर्णन किया गया है।

***परछाई नाच,* प्रियंवद, 2000**

कानपुर के औद्योगिक परिवेश में उस मध्यवर्गीय समाज का चित्रण किया गया है जो अपनी लम्बी ग़ुलामी के ख़िलाफ़ ऐतिहासिक विरासत को भूल कर बहुराष्ट्रीय उद्योगपतियों के आकर्षक और रहस्यपूर्ण मकड़जाल की ओर मुग्ध भाव से बढ़ता जा रहा है।

***दिल्ली में उनींदे,* गगन गिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000**

सत्यकथाओं पर आधारित इस स्मृति-लेख संग्रह में लेखिका 'दिल्ली में उनींदे' और 'दिल्ली-1994' शीर्षक से दो स्मृति-लेख संकलित है। 'दिल्ली में उनींदे' में दिल्ली के एक ऑटो चालक के जीवन-संघर्ष की मार्मिक दास्तान है तो 'दिल्ली-1994' में केरल से दिल्ली आए मलयालम के एक पुरस्कृत कवि से संस्कृति पुरस्कार समारोह में मुलाक़ात और उसके बाद फ़ोन पर उसके साथ हुई भावनात्मक बातचीत को बड़े ही मार्मिक अंदाज़ में बयान किया गया है।

***दीवारों के बाहर,* निदा फ़ाज़ली, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2000**

इस आत्मकथात्मक उपन्यास की शुरुआत निदा फ़ाजली मुंबई के अपने घर से करते हैं। उपन्यास में लेखक बंबई की झुग्गी झोपडियों एवं पिछड़े इलाक़े के जन-जीवन, वहाँ फैले अवैध धंधे, अपराध आदि को देख कर सिर्फ़ लेखकीय भावुकता व्यक्त नहीं करता बल्कि इन समस्याओं की जड़ में जाता है और इन सबके लिए राजनीतिक नेतृत्व पर सीधी उंगली उठाता है। 'दीवारों के बीच' लेखक के आत्मकथात्मक उपन्यास का पहला खंड है।

***तबादला,* विभूति नारायण राय, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2002**

यूँ तो इस उपन्यास का कथाक्षेत्र इलाहाबाद का कुंभ मेला है मगर इसकी असली ज़मीन उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ है। इसमें आज़ादी के बाद के सरकारी दफ़्तर के भ्रष्ट माहौल, उत्तर प्रदेश में राजनेताओं-अफ़सरों-ठेकेदारों की साठ-गाँठ का चित्रण मिलता है।

***सलाम आख़िरी,* मधु काँकरिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002**

कलकत्ता के सोनागाछी रेडलाइट एरिया की अँधेरी गलियों का सीधा साक्षात्कार कराते हुए लेखिका सभ्य समाज की संवेदनहीनता और कठोरता को भी साथ-साथ झिंझोड़ती चलती है।

***काशी का अस्सी,* काशीनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002**

ज़िन्दगी और ज़िन्दादिली से भरा एक अलग क़िस्म का उपन्यास। उपन्यास के पारंपरिक मान्य ढाँचों के आगे प्रश्नचिन्ह। इसकी कथाओं का केन्द्र अस्सी है। काशी का अस्सी घाट। हर कथा में स्थान भी वही, पात्र भी वही – अपने असली और वास्तविक नामों के साथ, अपनी बोली-बानी और लहजों के साथ। हर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मुद्दे पर इन पात्रों की बेमुरव्वत और लट्ठमार टिप्पणियाँ काशी की उस देशज और लोक परम्परा की याद दिलाती है जिसके वारिस कबीर और भारतेन्दु भी थे।

***प्रेम गली अति साँकरी*, शाज़ी ज़मा, पीतम्बरा प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2002**

मीडियाकर्मी लेखक का पहला उपन्यास जो लंदन के इंडियन वायएमसीए की हाईगेट सीमेट्री — जहाँ कार्ल मार्क्स दफ़न हैं — तक का वैचारिक और भावनात्मक सफ़र करता है। बक़ौल लेखक यह पारम्परिक प्रेमकथा नहीं बल्कि इन्सानी ताल्लुक़ात पर केंद्रित है और मुख्य पात्र यह कह नहीं सकता कि वह बातों पर सवार है या बातें उस पर।

***अक्षयवट*, नासिरा शर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2003**

इलाहाबाद शहर की पहचान न केवल स्थानीय बल्कि बाहर से भी आए युवाओं की शरणस्थली, शिक्षास्थली, संघर्षस्थली और मोक्षस्थली के रूप में है। इस शहर के स्थानिक, सामाजिक, धार्मिक और सांसारिक परिदृश्य में युवा पीढ़ी के सपनों और संघर्षों को इस उपन्यास में सघन अभिव्यक्ति मिली है।

***जम्मू–जो कभी शहर था*, पद्मा सचदेव, भारतीय ज्ञानपीठ, 2003**

समाज के सांस्कृतिक व्यक्तित्व को लेकर घटनाएँ बुनने में सिद्धहस्त लेखिका का यह उपन्यास एक प्रकार से जम्मू का दस्तावेज़ भी है और उसका इतिहास भी। लेखिका ने इसके अलावा भी जम्मू की समस्याओं और एक मरती हुई सांस्कृतिक धरोहर को लेकर कई संस्मरण, रिपोर्ताज और लेख लिखे हैं।

***कैसी आग लगाई*, असगर वजाहत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004**

लगभग आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये इस उपन्यास का कथाक्षेत्र अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और अलीगढ़ शहर हैं। इसमें अलीगढ़ शहर का विविधताओं से भरा जीवन, वहाँ की साम्प्रदायिकता, वहाँ के छात्र जीवन, स्वातंत्र्योत्तर राजीनति, सामंतवाद, मुस्लिम समाज, छोटे शहरों का जीवन और महानगर की आपाधापी के साथ वहाँ के सामाजिक अंतर्विरोधों में जन्मे वैचारिक संघर्षों से भी पाठक रू-ब-रू होते हैं।

***सीन-75*, राही मासूम रज़ा, राजकमल, प्र.सं.-2004**

फ़िल्मी दुनिया की लक-दक के पिछवाड़े का मंज़र दिखाता है जहाँ पाठक चेहरों के प्रति-चेहरों से रू-ब-रू होते हैं। फ़िल्म संसार में क़ामयाबी हासिल करने के लिए नए लोगों को क्या शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं इसकी एक दिलचस्प और कुछ अफ़सुर्दा दास्तान है यह उपन्यास। इस उपन्यास को यौन नैतिकता का बंबइया 'चलता है' भाष्य भी कहा जा सकता है।

***पक्का महाल*, अजय मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004**

बनारसी जीवन पर ऐसा पहला उपन्यास है, जिसमें बनारस में बहती रस-गंगा, पक्के महालों की चुहल और मस्ती, मेले तमाशों, लोक संस्कृति के साथ बनारस का इतिहास, पांडित्य, गुंडई, ठगी, औदार्य, भांग-बूटी, दालमंडी, बहरी अलंग, विधवाओं, मठों और रईसी की अनूठी छवि अत्यंत विशद तथा सजीव रूप में आई है। कथावस्तु 1956 से 1986 तक होकर भी इसमें परत-दर-परत सौ वर्षों का इतिहास है।

***आदमी का ज़हर*, श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली**

यह उपन्यास 'अभिजात हिन्दी' की शायद इकलौती रचना है जो 'मर्डर मिस्ट्री' की विधा का इस्तेमाल कर शहर की 'पॉपुलर लिटरेचर' में व्याप्त छवि की पड़ताल करने का प्रयास करती है। राजनीति, सेक्स, भ्रष्टाचार जैसे पॉपुलर विषयों को सामने रखकर इसे बुना गया है।

: उपन्यासेतर गद्य विधाओं में शहर :

उपन्यासेतर साहित्य में शहर की तलाश करते हुए हम शुरुआत करते हैं सबसे लोकप्रिय साहित्यिक विधा कहानी से। ज़माना यदि मॉडर्न है तो शहर से उसका कुछ ख़ास ताल्लुक़ तो होगा ही, वह इसलिए कि इस दरम्यान और ख़ासकर आज़ादी के बाद यहाँ तरक्क़ी का जो रास्ता अख़्तियार किया गया उसमें शहरीकरण को कुछ ज़्यादा ही तवज्जो दी गई। तरक्क़ी के लिहाज़ से यह कितना वाजिब था या है और कितना ग़ैरवाजिब, यह एक अलग बहस का मुद्दा हो सकता है लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि अगर शहर तेज़ी से पसरेंगे तो शहरी मिज़ाज की कहानियों की तासीर भी ज़रूर बदलेगी। भई, निर्मल वर्मा सरीखे शहराती क़िस्म के कहानीकार थोड़े न लिखेंगे गँवई अंदाज़ के प्रेमचंद या फणीश्वरनाथ रेणु जैसी कहानियाँ।

इस लेख की नज़र से शहरी मिज़ाज की कहानियों को लेकर हमारी कसौटी बिल्कुल साफ़ है। हमें चाहिएं ऐसी कहानियाँ जिनमें या तो बाक़ायदा 'लोकेल' के तौर पर कोई शहर हो या शहर की तासीर हो। शहर की कहानियों पर तफ़सील से पहले हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि शहर की कहानियाँ आज भले धड़ल्ले से लिखी जा रही हों लेकिन यह विरासत हमें दादी-नानी के क़िस्से-कहानियों से ही मिली है। अब दादी-नानी का ज़माना नहीं रहा इसलिए आज की कहानियों का 'लोकेल' ही नहीं बल्कि कथ्य और शिल्प सहित उसका पूरा कथानक भी दादी-नानी के क़िस्से-कहानियों से भिन्न होना लाज़िमी है। कहानियों में यह तब्दीली ख़ासतौर पर तब सामने आई जब हिंदुस्तान में प्रेस के ईजाद के बाद मौखिक गद्य परंपरा लिखित परंपरा में तब्दील होने लगी। यानी हिंदी क्षेत्र में कहानियों के 'श्रोतावर्ग' के 'पाठकवर्ग' में तब्दील होने की यह प्रक्रिया 19वीं सदी में आरम्भ हुई। लेकिन 17वीं सदी में 'बैताल पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी' और उससे भी पहले 'कथा सरित्सागर' जैसी कथापुस्तकें टूटी-फूटी हिंदी में लिखी जा चुकी थीं और नागरी लिपि में छपने वाली शुरुआती कथापुस्तकें भी यही थीं। हिंदी की शुरुआती कथा-पुस्तक — जिसे प्रेमचंद ने उपन्यास मानने से इन्कार किया है — 1766 में जन्मे इंशा अल्ला खाँ रचित 'रानी केतकी की कहानी' है, जो 1803 ई. के आसपास लिखी गई थी। सूफ़ी प्रेमाख्यानों की पद्धति पर लिखी गई यह एक ऐसी गद्यकथा है जिसमें अतिलौकिक तत्वों, फ़ारसी कथानक रूढ़ियों तथा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों की भरमार है।

1870 में लिखी गई पं. गौरीदत्त रचित 'देवरानी जेठानी की कहानी' में पहली बार परम्परा से हटकर कथा कहने की कोशिश की गई है। कथाकार ने इसमें एक सामान्य मध्यवर्गीय वैश्य परिवार की देवरानी-जेठानी की कहानी कही है। इसके पात्र पूरी तरह लौकिक हैं जिनका ताल्लुक़ दिल्ली, मेरठ, हापुड़, खुर्जा, गुड़गाँव आदि जगहों से है। इस लिहाज़ से 'देवरानी जेठानी की कहानी' हिंदी की पहली कहानी है जिसमें वास्तविक शहर पहली बार मूर्त होता है। वैसे तो सन् 1900 ई. में लिखी हिंदी की तथाकथित पहली कहानी *इंदुमति* (किशोरीलाल गोस्वामी), 1902 में लिखी गई 'गुलबहार' (किशोरीलाल गोस्वामी), 'प्लेग की चुड़ैल' (मास्टर भगवानदास) 1903 में लिखी गई 'ग्यारह वर्ष का समय' (रामचंद्र शुक्ल), गिरिजादत्त वाजपेयी की 1903 में लिखी 'पंडित और पंडितानी' तथा बंगमहिला की 1907 में लिखी गई कहानी 'दुलाईवाली' भी शुरुआती दौर की उल्लेखनीय कहानियाँ हैं लेकिन इनमें शहर की उपस्थिति स्पष्ट नहीं है। हाँ, 1915 में *सरस्वती* में छपी चंद्रधर शर्मा गुलेरी की बहुचर्चित कहानी 'उसने कहा था' में अमृतसर की पृष्ठभूमि ज़रूर है। इसी दौरान प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', सुदर्शन आदि कहानीकारों ने कहानी लेखन शुरू किया जिनमें शहरी परिवेश की भी कई कहानियाँ हैं।

प्रेमचंद ने जहाँ लखनऊ और वहाँ के नवाबी अंदाज़ को कथावस्तु बनाकर 'शतरंज के खिलाड़ी' जैसी चर्चित कहानी लिखी, जिस पर आगे चलकर सत्यजित रे ने इसी नाम से फ़िल्म बनाई, वहीं उन्हीं की एक अन्य कहानी 'बैंक का दिवाला' के केंद्र में भी लखनऊ शहर की व्यावसायिक दुनिया और उससे जुड़े हुए लोग हैं।

इस कहानी में उन्होंने यह दिखलाने की कोशिश की है कि 'एक बैंक के दिवालिया होने का असर कितनी संस्थाओं पर पड़ता है — अनाथालय अब नहीं चल सकता क्योंकि उसके एक लाख रुपये डूब गये हैं, पाठशाला बंद हो जाएगी क्योंकि उसका सारा धन इसी बैंक में जमा था। इतना ही नहीं, छोटे-मोटे रोज़गार करनेवाले न जाने कितने लोगों का चैन इस 'नैशनल' बैंक के दीवालिया होने के साथ चला गया।' इसी तरह लगभग उन्हीं के समकालीन जयशंकर प्रसाद की लोकप्रिय कहानी 'गुंडा' का लोकेल बनारस शहर है। ग़ौर करने की बात यह है कि उस ज़माने में यूँ तो ज़्यादातर आदर्शवादी कहानियाँ लिखी गईं लेकिन जो थोड़ी-बहुत यथार्थवादी कहानियाँ लिखी गईं उनमें शहरी सामाजिक वीभत्सता का बड़ा बेलाग चित्रण किया गया है।

यह प्रेमचंद का ज़माना था जिसमें एक गद्य विधा के रूप में हिंदी कहानी ने अपनी मुकम्मल पहचान बनाई। उसी ज़माने में जिन कहानीकारों ने कहानी लेखन में अपनी ख़ास पहचान बनाई उनमें चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन आदि प्रमुख हैं। उसी ज़माने में जासूसी, तिलिस्मी और अय्यारी क़िस्म की कहानियाँ लिखनेवाले गोपालराम गहमरी, दुर्गा प्रसाद खत्री, जी.पी. श्रीवास्तव आदि कहानीकारों की अनेक कहानियों में भी 'शहरी सेंसिबिलिटी' दिखलाई पड़ती है।

मनोविश्लेषणवादी और व्यक्तिवादी कहानियों के क्षेत्र में इस दौरान जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी और कुछ आगे चलकर निर्मल वर्मा आदि कथाकार सक्रिय हुए। सन् सैंतालीस के बाद युरोप की तर्ज़ पर हिंदुस्तान में तेज़ी से शुरू हुए शहरीकरण और गाँव से शहर आए मनुष्य की मनःस्थिति, उसके अकेलेपन, अलगाव आदि को ख़ास तरजीह देकर इन कहानीकारों ने कुछ ऐसी कहानियाँ लिखीं जो शहरी सेंसिबिलिटी के लिहाज़ से मील का पत्थर हैं। मसलन, अज्ञेय की विभाजन की त्रासदी पर लिखी गई 'शरणदाता'। इसमें दंगे-फ़साद, मारकाट के बाद के 'विषाक्त वातावरण, द्वेष और घृणा की चाबुक से तड़फड़ाते हुए हिंसा के घोड़े, विष फैलाने को संप्रदायों के अपने संगठन और उसे भड़काने को पुलिस और नौकरशाही' की वजह से एक-एक कर लाहौर छोड़कर हिंदुस्तान भागते और इक्का-दुक्का रह गए दहशतज़दा हिंदू परिवारों के बीच रफ़ीकुद्दीन वकील और देविन्दरलाल की अज़ीज दोस्ती भी कुछ-कुछ लाचार सी दिखती है। इस कहानी का कथाक्षेत्र मूलतः लाहौर है लेकिन इसमें जालंधर और दिल्ली भी हैं। विभाजन की इस त्रासदी पर हिंदी में बहुत सारी कहानियाँ लिखी गई हैं। उन्हीं में से एक है मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक'। यह कहानी शुरू होती है अमृतसर से, जहाँ विभाजन के दौरान मजबूरन लाहौर जा बसे मुसलमानों की एक जमात हॉकी मैच देखने के बहाने अमृतसर घूमने आती है। इस कहानी में विभाजन के वक़्त मजबूरी में अमृतसर छोड़कर जाने वाले लोगों के नॉस्टैल्जिया को विषयवस्तु बनाया गया है।

विभाजन की इस त्रासदी पर हिंदी, उर्दू और अन्य भारतीय भाषाओं में काफ़ी साहित्य रचा गया है। स'आदत हसन मंटो, कृश्नचंदर, राजिन्दर सिंह बेदी, इस्मत चुग़ताई, क़ुर्रतुल ऐन हैदर आदि कहानीकारों की बहुतेरी कहानियाँ गंगा-जमुनी संस्कृति को आधार तो बनाती ही हैं, कथाक्षेत्र के लिहाज़ से इनमें से कई विशुद्ध रूप से शहरी परिवेश की हैं। दरअसल विभाजन और इसके आसपास के दौर, मोटे तौर पर कहा जाय तो सन् 40 के दशक में मंटो द्वारा लिखे गए बहुत सारे निबंध, रेडियो नाटक आदि भी उनकी कहानियों की तरह ही उस दौर के शहरी जीवन और शहरी दृश्यों को बहुत अनोखे अंदाज़ में बयान करते हैं, मसलन मंटो की मशहूर कहानी 'काली शलवार' ही देखें। यह कहानी अंबाला छावनी से देहली — दिल्ली — आई एक वेश्या की ज़िन्दगी और उसके अरमानों को बड़े ही मार्मिक अंदाज़ में बयान करती है। 'बू', 'ख़ाली डिब्बा, ख़ाली बोतल', 'खोल दो', आदि मंटो की कई कहानियों का कथाक्षेत्र दिल्ली, अमृतसर, मुंबई, पेशावर, लाहौर आदि शहर रहे हैं। 'अमृतसर आ गया है' विभाजन के दौरान पैदा हुए पागलपन को बयान करनेवाली एक और उल्लेखनीय कहानी है। इसी तरह उनके निबंध 'दीवारों पर लिखना', 'कल सवेरे जो आँख खुली' आदि। उधर बेगम अनीस क़िदवई की 'आज़ादी की छाँव में' बँटवारे के ठीक बाद की, उजड़े-हुओं की कैंपों में बसती दिल्ली का मार्मिक आख्यान शरणार्थी ज़िन्दगी को संवारने में सन्नद्ध लेखिका की क़लम से निकला महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। एक बीते समय और उखड़े समाज का इतना जीवंत, इतना प्रामाणिक वर्णन मुश्किल से मिलता है। इसे पढ़ते हुए सन् तीस के

दशक में पर्दानशीन कुलीन परिवारों में एक लड़की के पढ़ने-लिखने में कितनी मुश्किलें आती होंगी, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है।

सन् सैंतालीस के बाद जहाँ दिल्ली ने हिंदी, उर्दू और अन्य भारतीय भाषाओं के लेखकों को अपनी ओर आकर्षित किया – जिसकी मुख्य वजह शायद आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं अन्य सरकारी ग़ैरसरकारी मीडिया का दिल्ली में विस्तार रहा – वहीं दूसरी तरफ़ यही वह दौर था जब उपनिवेशवादी दौर में समुद्री व्यापार का केंद्र रहे और इस वजह से बड़ी तेज़ी से आबाद हुए मुंबई शहर पर आज़ादी अथवा विभाजन के बाद के हिंदुस्तान की आर्थिक चुनौतियों को दूर करने की नयी ज़िम्मेदारी आन पड़ी। शायद इसीलिए इसे हिंदुस्तान की 'आर्थिक राजधानी' के ख़िताब से नवाज़ा गया। देश के गाँवों, क़स्बों या छोटे-छोटे शहरों से नौकरी और रोज़ी-रोटी की तलाश में दिल्ली, मुंबई, कोलकाता जैसे शहरों में आए लेखकों का पाला इन शहरों के अलग-अलग रूपों से हुआ, जिन्हें इन लेखकों ने साहित्यिक अभिव्यक्ति भी दी।

हिंदुस्तान की यह 'आर्थिक राजधानी' करोड़ों हिंदुस्तानियों के रजतरंगी सपनों यानी फ़िल्मों की दुनिया और न जाने किस किस की मुंबई के रूप में जानी गई। उर्दू के मशहूर शायर निदा फाज़ली शायद सही ही फ़रमाते हैं कि ऊपर से एक दिखने वाली इस मुंबई में कई मुंबइयाँ हैं। इसकी वजह चाहे फ़िल्म इंडस्ट्री रही हो या और कुछ लेकिन यह सच है कि सन् सैंतालीस के बाद इस महानगर ने उर्दू और हिंदी के लेखकों को ख़ूब आकर्षित किया है। राही मासूम रज़ा, अली सरदार जाफ़री, कैफ़ी आज़मी, निदा फ़ाज़ली, कृश्नचंदर, राजिन्दर सिंह बेदी, क़ुर्तुल ऐन हैदर, बलराज साहनी, खुशवंत सिंह, जावेद अख़्तर, गुलज़ार, शकील बदायूँनी, मजरूह सुल्तानपरी आदि उर्दू और जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, धर्मवीर भारती, शैलेश मटियानी, पुष्पा भारती आदि न जाने कितने हिंदी लेखकों ने इस महानगर से बेपनाह मुहब्बत की है। ऊपर के उर्दू के कुछ नामचीन अदीबों के बारे में निदा फ़ाज़ली ने अपने आत्मकथात्मक नॉवेल 'दीवारों के बाहर' में काफ़ी रोचक और बेबाक टिप्पणी की है।

लगभग इसी समय (सन् 56 के आसपास) हिंदी में 'नयी कहानी' आंदोलन की शुरुआत हुई। मुख्य रूप से तीन कहानीकारों – मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर, और एक आलोचक नामवर सिंह, तथा कहानी-पत्रिकाओं के एक संपादक भैरवप्रसाद गुप्त के रचनात्मक तथा वैचारिक सहयोग से कहानी के क्षेत्र यह नई जागृति आती है। कुछ अन्य कहानीकार भी इसके साथ आरम्भ से जुड़े रहे हैं – मार्क डेय, शिवप्रसाद सिंह तथा निर्मल वर्मा आदि।

नयी कहानी आंदोलन से सीधे तौर पर जुड़े या उस दौर में लगातार लिख रहे ज़्यादातर कहानीकारों की कहानियाँ, जैसे निर्मल वर्मा की 'लवर्स', 'पिक्चर पोस्टकार्ड' और मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक' जैसी कहानियाँ दिल्ली को लोकेल बनाकर लिखी गई हैं। इसी कड़ी में देखें तो कमलेश्वर की 'खोई हुई दिशाएँ' (1963) की कथा दिल्ली के कनॉट प्लेस के इर्दगिर्द मंडराती है, जिसका कथानायक तीन साल पहले गंगा किनारे बसे किसी शहर से दिल्ली आता है। कमलेश्वर की दिल्ली पर केंद्रित एक और कहानी है 'दिल्ली में एक मौत'। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से छपे उनके कहानी संग्रह में ये दोनों कहानियाँ संकलित हैं।

नई कहानी आंदोलन की त्रयी में से एक मोहन राकेश की 'एक और ज़िन्दगी' और 'मिस पाल', राजेन्द्र यादव की 'बिरादरी बाहर','जहाँ लक्ष्मी क़ैद है' और 'छोटे-छोटे ताजमहल', कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' के अलावा इसी दौर में सक्रिय धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो', भीष्म साहनी की 'चीफ़ की दावत' ज्ञानरंजन की 'पिता', 'घंटा' और 'बहिर्गमन', निर्मल वर्मा की 'अंतर', हरिशंकर परसाई की 'भोलाराम का जीव', दूधनाथ सिंह की 'प्रतिशोध', अमरकांत की 'ज़िंदगी और जोंक' एवं 'डिप्टी कलक्टरी', शेखर जोशी की 'कोशी का घटवार', मन्नू भंडारी की 'त्रिशंकु', उषा प्रियंवदा की 'वापसी', कृष्णा सोबती की 'बादलों के घेरे', शिवप्रसाद सिंह की 'नन्हो' आदि तथा काशीनाथ सिंह, गोविंद मिश्र, बटरोही, ममता कालिया, रवीन्द्र कालिया, विजयमोहन सिंह, सत्येन कुमार, चित्रा मुद्‌गल, मेहरुन्निसा परवेज़, गिरिराज किशोर, ज्ञानप्रकाश, सतीश जमाली, प्रयाग शुक्ल जैसे कहानीकारों की कहानियों में 'वातावरण' और ख़ासतौर पर 'शहरी वातावरण' का अच्छाख़ासा असर दिखता है। इनमें से कुछ में तो सीधे तौर पर लोकेल के रूप में शहर का इस्तेमाल किया गया है लेकिन ज़्यादातर में

तेज़ी से पसर रहे शहर और शहरी समाज में जीवन की उलझती गुत्थियों, लगातार बढ़ते मध्यवर्ग और कामकाजी होती स्त्रियों की वजह से मर्दों की सामंती मानसिकता को मिलती चुनौती के दबाव में बदलते स्त्री-पुरुष संबंधों आदि को व्यापक अभिव्यक्ति मिली है। उक्त कहानियों में शहरीकरण और आधुनिक जीवन बोध से उत्पन्न अनास्था, कुंठा, संत्रास, क्षणवाद, घुटन, निराशा तथा जीवन के प्रति वितृष्णा आदि को भी अभिव्यंजित किया गया है।

हिंदी में शहर को लोकेल के रूप में इस्तेमाल कर ऐसी अनंत कहानियाँ लिखी गई हैं जिन सबका उल्लेख करना यहाँ संभव नहीं है, लेकिन सन् 60-65 के बाद लिखी गई कहानियों में आज़ादी के बाद पैदा हुई उम्मीदों के टूटने यानी स्वप्न-भंग को कुछ ज़्यादा ही तवज्जो दी गई। इस दौर के जिन कहानीकारों ने गहन व परिपक्व अनुभवों के आधार पर आधुनिक शहरी, क़स्बाई और ग्रामीण जीवन के अनुभवों और विडंबनाओं को आधार बनाकर कहानियाँ लिखीं उनमें दूधनाथ सिंह, महीप सिंह, सुरेश सिन्हा, ज्ञानरंजन, गिरिराज किशोर, भीमसेन त्यागी, धर्मेन्द्र गुप्त, इब्राहिम शरीफ़, विश्वेश्वर, गंगाप्रसाद विमल, रवीन्द्र कालिया, काशीनाथ सिंह, ज्ञानप्रकाश आदि उल्लेखनीय हैं।

इसी दौर में महिला कहानीकारों की एक पीढ़ी कहानी लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हुई जिसने कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा आदि की विरासत को आगे बढ़ाने का काम तो किया ही, साथ ही 20वीं सदी के आख़िरी दौर में हिंदुस्तान में आर्थिक उदारीकरण, बाज़ारवाद, सूचना प्रौद्योगिकी और टेलीविज़न क्रांति आदि के वृहत्तर हिंदुस्तानी समाज ख़ासकर स्त्री जीवन को दर्शाने की कोशिश भी की। उनमें प्रमुख हैं — नासिरा शर्मा, चित्रा मुद्गल, क्षमा शर्मा, दूर्वा सहाय, लवलीन, जया जादवानी, कुसुम अंसल, सुशीला टाकभौरे, मधु काँकरिया, आभा गुप्ता, अर्चना वर्मा, सुधा अरोड़ा, गीतांजलि श्री, कात्यायनी, स्मिता, नीलम कुलश्रेष्ठ, उषा महाजन, नीलाक्षी सिंह, शीताक्षी सिंह आदि।

मराठी की तर्ज़ पर इन्हीं दिनों दलित लेखन का दौर भी शुरू हुआ जिसमें ओमप्रकाश वाल्मिकि, श्यौराज सिंह बेचैन, सूरजपाल चौहान, सुशीला टाकभौरे, भगवानदास मोरवाल आदि ने शहर और गाँव को केन्द्र में रखकर दलित जीवन के इर्द-गिर्द कई कहानियाँ लिखीं।

आठवें-नौवें दशक में राजेन्द्र यादव के संपादन में प्रकाशित हिंदी मासिक *हंस* ने कई महत्वपूर्ण कथाकारों को सामने लाने का काम किया। इनमें उदय प्रकाश, अखिलेश, संजीव, प्रियंवद आदि प्रमुख हैं। सन् 1987 के *हंस* में छपी उदय प्रकाश की बहुचर्चित कहानी 'तिरिछ' गँवई गजाधर बाबू के शहर आगमन और उनकी विडंबनापूर्ण मृत्यु को आधार बनाकर लिखी गई है। 'तिरिछ' संग्रह में संकलित 'रामसजीवन की प्रेमकथा' दिल्ली के जेएनयू में पढ़ाई कर रहे एक छात्र के एकतरफ़ा प्रेम की मर्मांतक कहानी है। इसी कहानी संग्रह में शहर की पृष्ठभूमि पर एक और उल्लेखनीय कहानी है — 'हिन्दुस्तानी इवान दानिसोविच की ज़िंदगी का एक दिन'। यह कहानी मेरठ से दिल्ली आकर बेरसराय में रहकर प्रूफ़रीडरी करने वाले एक अतिसामान्य व्यक्ति की शायद सामान्य, पर तरद्दुद से पटी ज़िंदगी के एक असामान्य दिन की घटना पर आधारित है, जब अन्य मुश्किलों के अलावा गूँगे बेटे के स्कूल का न खुलना और बसों का न चलना (क्योंकि प्रधानमंत्री बोट क्लब में जनसभा को संबोधित कर रहे हैं) उसे एक असामान्य व मानीख़ेज़ क़दम उठाने पर बाध्य कर देता है। *इंडिया टुडे* के साहित्य विशेषांक में पहली बार प्रकाशित उदय प्रकाश की ही 'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी का तानाबाना दिल्ली और ग़ाज़ियाबाद के इर्द-गिर्द बुना गया है। कथानायक पॉल गोमरा ग़ाज़ियाबाद की कवि नगर नामक कॉलनी में रहते हैं और दिल्ली के आईटीओ पुल के पास बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग पर स्थित एक राष्ट्रीय दैनिक के दफ़्तर में काम करते हैं। आर्थिक उदारीकरण, भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, तकनीकी विकास और सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति के दिल्ली और इसके आसपास के क्षेत्रों के जन-जीवन और समाज पर पड़ने वाले प्रभावों और उत्तर आधुनिक बदलावों को केन्द्र में रखकर लिखी गयी है यह कहानी। इसके अलावा लेखक के अंतिम कहानी संग्रह *दत्तात्रेय के दुख* संग्रह में संकलित 'आचार्य की रज़ाई' कहानी दक्षिणी दिल्ली के बेरसराय में एक तबेले में अपनी बीवी और दो बच्चों के साथ रहनेवाले एक सुप्रसिद्ध चित्रकार और नाटककार की फ़ाकाकशी और संघर्ष को बयान करती है। साथ ही यह यहाँ के एक विश्वविद्यालय संभवतः जेएनयू के एक शिक्षक के नैतिक पतन और उसके शोषक रूप का पर्दाफ़ाश भी करती है। उन्हीं की 'दिल्ली की दीवार' दिल्ली की सत्ता, व्यवस्था, पुलिस-प्रशासन, सूचना के रूप

में झूठी अफ़वाह फैलाते अख़बार और मीडिया यहाँ के ताकतवर लोगों की आम जनविरोधी कारगुज़ारियों, उनके भ्रष्ट आचरण से पिस रहे अपने स्वप्नों और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए दिल्ली आए मेहनती, ईमानदार, प्रतिभाशाली लोगों की कुंठाओं ओर उनके अंदर छिपे भय, डर को व्यक्त करने वाली और गहरे आक्रोश में लिखी गयी कहानी है। इसमें दिल्ली के भूगोल, यहाँ के इतिहास, नये-पुराने मुहल्लों, हाट-बाज़ार, पीर-मज़ार, दरगाह आदि का ज़िक्र है। इसी लेखक की 'पीली छतरी वाली लड़की' नामक कहानी की पृष्ठभूमि में परोक्ष रूप से दिल्ली का जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय और सागर विश्वविद्यालय परिसर हैं। इस लंबी कहानी में कहानीकार ने इक्कीसवीं सदी में दाख़िल हो रहे हिंदुस्तान में सांप्रदायिकता, ब्राह्मणवाद, उपभोक्तावाद, आतंकवाद जैसी समस्याओं से दो-चार होते हिंदुस्तान के दर्द को समझने की कोशिश की है। कहानी में व्यंजित दिल्ली के बाज़ारीकरण का एक नमूना देखियेः '...यह वह समय था जब इंडिया के बाज़ारों में तरह-तरह के परफ़्यूम, कॉस्मेटिक्स, इलेक्ट्रिकल और इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स, वॉशिंग मशीन, सेलुलर फ़ोन, डिजिटल टीवी, हैंडी कैम अंटे पड़े थे। हर हफ़्ते आधा दर्जन कारों के नये मॉडल सामने आ रहे थे। दिल्ली में मैक्डोनल्ड, केएफ़सी और निरुलाज़ के सैकड़ों ईटिंग प्वाइंट्स खुल रहे थे। राजधानी और दूसरे बड़े शहरों में नाइट क्लब्स खुल गये थे, जहाँ रात में अधनंगी मॉडल्स व्हिस्की और वाइन बेचती थीं और जहाँ मंत्रियों-नौकरशाहों और अपराधियों की संतानें ऐश करती थीं। देसी-विदेशी सट्टेबाज़ खुले आम लोगों में जुए और लॉटरी की लत डालकर उन्हें करोड़पति और दस करोड़पति बनाने का स्वप्न दिखा रहे थे'।

शहर पर केंद्रित कहानियों की इस यात्रा में दिल्ली से बाहर निकलकर पास के शहर चंडीगढ़ की ओर चलने पर हमारी नज़र जाती है कथाकार-नाटककार स्वदेश दीपक की एक कहानी 'जय हिंद' पर। 1973 में लिखी गई इस कहानी के केंद्र में है दुनिया के ख़ूबसूरत शहर का इनाम प्राप्त कर चुका शहर चंडीगढ़। देश के दो समृद्ध राज्यों पंजाब और हरियाणा की राजधानी चंडीगढ़ और केंद्रशासित प्रदेश चंडीगढ़...। इसी चंडीगढ़ शहर की ख़ूबसूरती और वहाँ सड़क किनारे बसी एक झुग्गी बस्ती के जहालत भरे जीवन की विडंबना और उसके भीतर के द्वन्द्व को दर्शाती है यह कहानी। इसी तरह मनोरोग से ग्रस्त लेखक के खंडित जीवन का कोलाज है — *मैंने माँडू नहीं देखा*। इसमें दिल्ली, कोलकाता और चंडीगढ़ हैं वहाँ के साहित्यकारों, रंगकर्मियों, प्रकाशकों के साथ।

नौवें दशक तक हिंदुस्तान ही नहीं बल्कि पूरे एशियाई मुल्कों में मुंबई की एक अलग पहचान बन चुकी थी। इसी अवधि में लिख रहे कुछ नये कहानीकारों ने तेज़ी से बदलती मुंबई के जन-जीवन को आधार बनाकर बहुत सारी कहानियाँ लिखीं। धीरेन्द्र अस्थाना, सुधा अरोड़ा, संजय छैल आदि ने भी इस महानगर को अपनी कहानियों के लोकेल के रूप में इस्तेमाल किया है। मुंबई की लेखिका सुधा अरोड़ा की एक ऐसी ही मार्मिक कहानी है 'काला शुक्रवार'। 1992 के मुंबई बम विस्फोट कांड पर लिखी गई इस कहानी पर बॉलीवुड में *ब्लैक फ़्राइडे* नाम से एक फ़िल्म भी बनी है। मुंबई बम विस्फोट की त्रासदी को बड़े ही मार्मिक अंदाज़ में बयान करती है यह कहानी। अपनी आँखों के सामने हुए इस हादसे के त्रासद अनुभवों को पहले रिपोर्ताज/संस्मरण और बाद में कहानी का फ़ॉर्म देकर लेखिका ने ऐसे नाज़ुक वक़्त में घर-बार छोड़कर रोज़ी-रोटी की जुगाड़ में महानगर आए लोगों की विडंबनात्मक स्थिति, साम्प्रदायिक दंगे-फ़साद, भगदड़ अपनी-अपनी जान बचाने की सबकी चिंता आदि को बुनियादी इन्सानी सवालों से जोड़कर देखने की कोशिश की है। लेखिका का आत्मकथ्य हैः '...मैं घर से बाहर थी और जलते हुए शहर के बीच से होती हुई घर पहुँची थी। उस दिन का अनुभव चेतना को झकझोर देने वाला था। कई दिन वह झुलसा हुआ शहर दिमाग़ पर वज़न की तरह रहा।' लेखिका ने दिसम्बर 1992 को अयोध्या में बाबरी मस्जिद ढहाए जाने के बाद मुंबई में हुए भीषण दंगों की विभीषिका पर 'जानकीनामा' शीर्षक से एक अन्य कहानी लिखी, जो इसी संग्रह में संकलित है। इसके अलावा लेखिका ने मुंबई को केन्द्र में रख कर 'होगी तुम वहीं', 'सत्ता संवाद', 'यह रास्ता उसी राह को जाता है' आदि कहानियाँ लिखीं। यूँ तो मुंबई को आधार बनाकर और भी बहुत सी कहानियाँ लिखी गई हैं लेकिन उन सबका ज़िक्र करना यहाँ संभव नहीं है।

भोपाल मध्य भारत का एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्र है। अशोक वाजपेयी, कमला प्रसाद, मदन सोनी, मेहरुन्निसा परवेज़ जैसे समकालीन लेखकों का बसेरा बने इस शहर को आधार बनाकर गुलशेर ख़ाँ 'शानी' ने 'दोजख़ी' कहानी की रचना की, हालांकि मूलतः साम्प्रदायिकता को आधार बनाकर लिखी गई इस कहानी में कभी

भीषण दंगों की मार सह चुके दिल्ली, मुरादाबाद, मेरठ, भागलपुर आदि शहरों का भी ज़िक्र आया है।

हिंदी के कई उपन्यासों और कहानियों की कथाभूमि रहा है बनारस। मिसाल के तौर पर भारतेन्दु हरिश्चंद्र, केशव प्रसाद मिश्र, पं. मदनमोहन मालवीय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नामवर सिंह, शिवप्रसाद सिंह, काशीनाथ सिंह आदि कहानी लेखकों ने अपनी रचनाओं में यत्र-तत्र इस शहर के अपने साक्ष्य बख़ूबी बयान किए हैं।

अखिलेश के संपादन में प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका *तद्भव* (अप्रैल 2003) में छपी प्रभात रंजन की कहानी 'बदनाम बस्ती' हिंदी गद्य साहित्य की परंपरागत विधाओं के खाँचे में भले फ़िट न बैठती हो लेकिन थोड़ी कहानी, थोड़ा संस्मरण... यानी मिश्रित विधागत शैली में लिखी गई इस रचना में उत्तर बिहार के शहर मुज़फ़्फ़रपुर के लालबत्ती क्षेत्र 'चतुर्भुज स्थान' के बाशिंदों, जिनमें कवि आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री भी शुमार हैं, पर एक दिलचस्प टिप्पणी की गई है। इसी लेखक की 'सहारा समय' हिंदी साप्ताहिक द्वारा आयोजित कहानी प्रतियोगिता 2004 में पुरस्कृत कहानी 'जानकी पुल' में यह दर्शाने की कोशिश की गई है कि महानगर केंद्रित विकास और चमक-दमक के बरक्स क़स्बे आज काफी पीछे छूट गये हैं। विकास के वर्तमान स्वरूप में कहीं उनका ज़िक्र भी नहीं है। विकास की इस अंधी दौड़ में न जाने कितने सपने अधूरे रह जाते हैं। ऐसे ही एक अधूरे सपने की कहानी है यह कहानी। इसमें जिन दिनों देश में 'इंडिया शाइनिंग' को लेकर बहस चल रही थी उन्हीं दिनों लेखक को अपने क़स्बे में बनता पुल याद आया।

हंस के बीस साला सफ़र में दर्जनों ऐसी कहानियाँ छपी हैं जो या तो सीधे-सीधे शहर पर केंद्रित हैं या शहर किसी न किसी रूप में मौजूद रहा है। ऐसी एक कहानी है कथाकार हेमंत की 'थ्रिल', जो *हंस* के मार्च, 1999 के अंक में छपी थी। 'पेज थ्री' फ़िल्म से बहुत पहले आई हेमंत की लंबी कहानी 'थ्रिल' इक्कीसवीं सदी के किसी भी शहर के एक नायक की हत्या की निजी-सार्वजिनक छवि-उलझनों को सुलझाने की कोशिश में शहर के बारे में बड़े सटीक सूत्र और आप्त-वाक्य गढ़ती है।

इस लेख में शहर पर लिखी गई सभी कहानियों को दर्ज करना संभव नहीं है। इसलिए ज़ाहिर है शहरों को लोकेल के रूप में इस्तेमाल कर लिखी गई कुछ अति महत्वपूर्ण कहानियाँ छूट गई हों। इसके लिए खेद जताते हुए यह गुज़ारिश तो की ही जा सकती है कि लेख के इस अंश को शहर पर केंद्रित कुछ चुनिंदा कहानियों की बानगी मात्र सामझा जाए। लेकिन कहानियों से इतर विधाओं में शहर पर केंद्रित लेखन का एक जायज़ा तो लिया ही जा सकता है, और इसकी शुरुआत फिर दिल्ली से ही क्यों न हो। दिल्ली में रह रहे बहुत से लेखकों ने समय-समय पर अपने संस्मरणों, आत्मकथाओं, जीवनियों, रिपोर्ताजों, रेखाचित्रों, पत्रों आदि में दिल्ली शहर से जुड़ी अपनी स्मृतियों को दर्ज किया है।

वैसे दिल्ली के साहित्य पर चर्चा हो और मिर्ज़ा ग़ालिब का ज़िक्र न हो तो बात कुछ जमेगी नहीं क्योंकि ग़ालिब की अपनी एक ख़ास तरह की दिल्ली है, सबसे अलहदा और सबसे मुख़्तलिफ़। 1857 का प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ग़ालिब ने अपनी आँखों से देखा था। 1857 से 1862 तक दिल्ली पर न जाने क्या-क्या विपत्तियाँ आईं। ग़ालिब के अधिकांश मित्र और संबंधी या तो लड़ते हुए मारे गये या फाँसी पर लटका दिए गए। ग़ालिब दिल्ली से बेहद प्यार करते थे। उन्होंने अपने जीवन के सांध्यकाल में देखा कि उस दिल्ली की बड़ी-बड़ी इमारतें ढहाई जा रही हैं। दिल्ली के साहित्यिकों का समाज तितर-बितर हो गया। भारतीय इतिहास की यह अत्यंत करुणाजनक घटना उनके बहुत से पत्रों में चित्रित हुई है। हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद ने 'ग़ालिब के पत्र' — दो खंडों में — प्रकाशित किये हैं, जिनका हिंदी में लिप्यंतरण और संपादन श्रीराम शर्मा और रामनिवास शर्मा ने किया है। 'दिल्ली की आख़री शमा' 'दिल्ली का एक यादगार मुशायरा' शीर्षक से मिर्ज़ा फ़रहतुल्लाह बेग ने 1907 में लिखा। ख़ुद भारतेंन्दु हरिश्चन्द्र ने उन्नीसवीं सदी में 'दिल्ली दरबार' शीर्षक से एक निबंधात्मक लेख लिखा।

दिल्ली एक शहर ही नहीं बल्कि सदियों तक हिंदुस्तान की सियासत और उस सियासत के नाम पर होने वाली मारकाट का गवाह और भुक्तभोगी भी रहा है। इतिहास ही नहीं साहित्य की किताबों में भी ऐसी बहुतेरी घटनाएँ दर्ज है। ऐसी ही एक बर्बर घटना का ज़िक्र किया है तैमूर ने अपनी आत्मकथा 'मल्फ़ुजात-ए-तैमूरी' में

किया है, जिसका हिन्दी रूपांतर राधेश्याम गोस्वामी ने 'दिल्ली के आँसू' शीर्षक से किया है, और इसे प्रकाशित किया है विश्वविजय प्रा.लि., नई दिल्ली ने।

दिल्ली पर केंद्रित साहित्य की खोज के क्रम में आत्मकथा पर नज़र दौड़ाएँ तो हमारे सामने आती है भीष्म साहनी की आत्मकथा *आज के अतीत*। इस किताब में उन्होंने बीसवीं सदी के शुरुआती रावलपिंडी, लाहौर और बाद में दिल्ली, बम्बई आदि शहरों से जुड़ी अपनी यादों को समेटने की कोशिश की है। इसके अलावा संस्मरणों में देखें तो कथामासिक *हंस* के संपादक राजेन्द्र यादव द्वारा संपादित *अभी दिल्ली दूर है* में सन् सैंतालीस के बाद अलग-अलग चरणों में दिल्ली आए और यहीं के होकर रह गए हिंदी के कुछ महत्वपूर्ण लेखकों की नज़र से दिल्ली को दर्शाने की कोशिश की गई है। मिसाल के तौर पर, भीष्म साहनी ने जहाँ आज़ादी के जश्न और मारकाट के बीच ठौर-ठिकाने की तलाश में पाकिस्तान से विस्थापित होकर आए हज़ारों शरणार्थियों की दिल्ली शहर में जद्दोजहद, शहर में शरणार्थी बस्तियों के निर्माण, साहित्यिक गोष्ठियों और संगठनों की गतिविधियों का केंद्र बनती-बिगड़ती दिल्ली के साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिदृश्य का आत्मावलोकन किया है, वहीं रघुवीर सहाय के लिए दिल्ली हमेशा परदेस रहा क्योंकि इस 'शहर की अपनी कोई जड़ें नहीं हैं। कहीं न कहीं संवाद की कमी दिल्ली के समाजों के अंदर भी बार-बार उभरकर आती थी...। दिल्ली शहर का भूगोल सामुदायिक जीवन के अनुकूल नहीं है। खानों में बँटे हुए जीवन के बावजूद दिल्ली के इलाक़े अपने आप में आत्मनिर्भर हैं, जिसके पीछे नगर विकास की योजना का हाथ कम और सन् सैंतालीस के विभाजन की त्रासदी के बाद बड़े पैमाने पर समाज के मन में अपने पुनर्वास की आकांक्षा ज़्यादा है।'

रघुवीर सहाय ने 'दिल्ली मेरा परदेस' शीर्षक से भी एक कॉलम लिखा था। इसमें उन्होंने अपने दिल्ली आने के संस्मरण के बहाने दिल्ली शहर से जुड़ी अपनी स्मृतियों की भी समेटने की कोशिश की है। इसके अलावा मोहन राकेश ने भी दिल्ली से जुड़ी अपनी दास्तान 'दिल्ली रात की बाहों मे' में दर्ज किया है, जो *परिवेश* में संकलित है।

शहरी समाज, जिसे लेखिका के दिल्ली बसेरे को देखते हुए दिल्ली का परिवेश और समाज भी माना जा सकता है, के बोलते शब्द-चित्रों की एक घूमती हुई रील है कृष्णा सोबती की *हम हशमत*। इस लंबी जीवन-चित्र-कथा में हर चित्र घटना है और हर चेहरा नायक। इन चेहरों में विख्यात लेखक हैं, पत्रकार हैं और अन्य अज़ीज़ हैं जिनमें बहुतेरे हमारे-आपके भी परिचित हैं। रोज़मर्रा के जीवन में पार्टियों, दावतों से लेकर टैक्सी ड्राइवरों तक से मुलाक़ातों का रोचक चित्रण। वास्तव में ये सभी जीवन-प्रवाह के अंग हैं जिनमें हम-आप और सारे ही लोग बह रहे हैं। इसके अतिरिक्त लेखिका की दिल्ली पर केंद्रित एक अन्य कृति 'दिल्लीः नई-पुरानी' भी है। यह उनकी किताब *सोबती एक सोहबत* में संकलित है।

दिल्ली शहर के साहित्य की खोजबीन करते हुए हमारी नज़र छोटी ही सही दिल्ली की सिनेमा की दुनिया पर भी पड़ती है। दिल्ली का सिनेमा से गहरा सरोकार रहा है। यूँ तो बॉलीवुड का ताल्लुक़ मुंबइया सिनेमा से है लेकिन दिल्लीवालों का भी सिनेमा से गहरा संबंध रहा है। *हिंदी सिनेमा और दिल्ली* किताब में दिल्ली में सिनेमा के अतीत, वर्तमान, विकास, कारोबार, दिल्लीवालों की पसंद-नापसंद, सिनेमा का उन पर और सिनेमा पर दिल्लीवालों का प्रभाव जाँचा गया है। सविता बाखड़ी और आदित्य अवस्थी की यह किताब प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली से 1997 में छपी है।

हम सभी जानते हैं कि दिल्ली का प्राचीन नाम इन्द्रप्रस्थ है। इन्द्रप्रस्थ पर हिंदी में कई किताबें मौजूद हैं, मसलन डॉ जयनारायण कौशिक की नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी से प्रकाशित *साहित्य में वर्णित इन्द्रप्रस्थ* एवं *विश्व की प्राचीनतम राजधानी इन्द्रप्रस्थ* आदि। दरअसल दिल्ली राजनीतिक ही नहीं अपितु धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व का भी केंद्र रहा है। इन दोनों किताबों में उन सभी पक्षों को समेटने की कोशिश की गई है। लेखक ने दिल्ली पर तीन अन्य किताबों की भी रचना की है। ये हैं – *दिल्ली अंचल की लोक संस्कृति*, *दिल्ली की अपनी कहानी*, जो हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली से छपी हैं और *इन्द्रप्रस्थ माहात्म्य कथा*। लाला महेश्वर दयाल ने भी *दिल्ली*

जो एक शहर है शीर्षक से एक किताब लिखी है जिसका हिंदी संस्करण 1991 में हिन्दी अकादमी, दिल्ली ने प्रकाशित किया है। इससे पहले *दिल्ली मेरी दिल्ली* शीर्षक से इसी लेखक ने एक और किताब लिखी।

मुंबई के कुछ महत्वपूर्ण लेखकों ने भी अपनी आत्मकथा में मुंबई को अच्छी ख़ासी तरजीह दी है। *पेशावर से बम्बई तक* ए.के. हंगल की एक ऐसी ही आत्मकथा है। राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, जयपुर से प्रकाशित इस किताब में मशहूर फ़िल्म कलाकार रह चुके लेखक ने अपने वैयक्तिक, राजनीतिक, रंगमंचीय तथा फ़िल्मी दुनिया से संबंधित यादों को लिपिबद्ध करने की कोशिश की है। इसके अलावा अमृतलाल नागर की आत्मकथा *टुकड़े-टुकड़े दास्तान* में उनके बचपन से लेकर बुढ़ापे तक, घर से लेकर मुंबई के फ़िल्म स्टूडियो और आकाशवाणी तक जीवन की झाँकी है। *बम्बई की पहली यात्रा* और *बम्बई — कल्पना और प्रत्यक्ष* में लेखक के अपने संघर्ष, आकांक्षाओं और अंतर्द्वन्द्व का जैसा बेलाग चित्रण किया है वैसा हिंदी की आत्मकथात्मक रचनाओं में कम मिलता है। बक़ौल लेखक, 'मैंने रंग-बिरंगी बम्बई के कुछ रंग देखे हैं। दोनों तरह के अनुभव अच्छी तरह पाये..। कीमती स्वादिष्ट पदार्थों के भोजन से लेकर बदहज़मी की दवा तक के लिए परेशान हुआ हूँ, साथ ही पैसे के अभाव में महीनों आधे पेट खाकर संतोष किया है, तीन दिन तक फ़ाके भी किये हैं। इस महानगरी में जहाँ अनेक प्रकार के ठग देखे, वहाँ ही एसे निष्काम सेवाव्रती साधु भी देखे जो बिना भेदभाव सबका भला करने में ही संलग्न रहते हैं।'

हिंदुस्तान की राजधानी दिल्ली से मुंबई होते हुए देश के तीसरे महानगर कलकत्ते को केंद्र में रखकर लिखे गये साहित्य की खोजबीन करते हुए हमारी निगाह जिन कृतियों पर पड़ी उनमें प्रमुख है ठाकुर श्रीनाथ सिंह की लिखी 'कलकत्ते की साहित्यिक यात्रा'। उनका यह लेख जुलाई, 1933 में *सरस्वती* में प्रकाशित हुआ था। साहित्यिक दृष्टि से शिवपूजन सहाय का लिखा एक अतिमहत्वपूर्ण लेख 'मतवाला कैसे निकला' *हंस* के आत्मकथा अंक में जनवरी, 1932 में छपा था। शिवपूजन सहाय द्वारा लिखित एक और लेख 'कलकत्ता प्रवास के संस्मरण', जो मंगलमूर्ति द्वारा संपादित और 1965 में छपे *वे दिन वे लोग* में संकलित है। इसी तरह शांतिप्रिय द्विवेदी ने एक लेख 'कलकत्ता में छह वर्ष पहले' शीर्षक से 1951 में लिखा था।

बनारस से ताल्लुक़ रखनेवाले कई लेखक अपनी आत्मकथाओं में इस शहर को वर्णित करने का लोभ संवरण नहीं कर पाए हैं। *अपनी ख़बर* शीर्षक आत्मकथा में पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपने बचपन के दिनों की काशी की विविधताओं को याद किया है। इसी तरह रामनाथलाल सुमन की बनारस या काशी पर लिखी टिप्पणी — 'छायावादयुगीन काशी' *त्रिपथगा* के अगस्त 1957 अंक में छपी। चंद्रधर शर्मा गुलेरी की बनारस पर लिखी दो उल्लेखनीय रचनाएँ हैं — 'काशी' तथा 'काशी की नींद और काशी के नूपुर'। ये दोनों रचनाएँ मनोहरलाल द्वारा संपादित और किताबघर, दिल्ली से प्रकाशित *गुलेरी रचनावली* में संकलित है। बनारस के सदाबहार लेखक हैं काशीनाथ सिंह। राजेन्द्र यादव द्वारा संपादित *आत्मतर्पण* में उन्होंने बनारस में अपने बीते दिनों को याद करते हुए लिखा है:

> चालीस साल हो रहे हैं मुझे बनारस शहर में रहते हुए। जुलाई सन् तिरपन में आया था मैं। क्या जलवा था मेरा। पहली बार रेलगाड़ी देखी, राजघाट का पुल देखा, बिजली देखी, रिक्शे देखे। ठहरा भैया के साथ गिरिजाघर चौमुहानी के पास 'सरस्वती प्रेस' की पहली मंज़िल पर, इसलिए और भी बहुत कुछ देखा..। मगर जल्दी ही जलवा फीका पड़ गया। बहरहाल, इसे मजबूरी कहिये या पसंद, मैने अपनी जीविका के लिए यही शहर चुना। अखंड हरि कीर्तनों का शहर। रात-रात कव्वालियों और विरहा-दंगलों का शहर। कंधे पर लंगोट या लंगोट की पगड़ी बांधे सिर का शहर। पान की दुकानों के आगे सुबह-शाम गप्पें मारता और ठहाके लगाता शहर। गलियों और गालियों, घाटों और मालियों, 'हर-हर महादेव' के नारों और तालियों का शहर...

राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद की आत्मकथा है — *सवानेह उमरी।* 1893 में प्रकाशित इस आत्मकथा में उन्होंने बनारस, कलकत्ता आदि शहरों की यात्राओं का वर्णन किया है। इसके अलावा बनारस पर विनोद तिवारी का भी एक सुचिंतित आलेख 'काशी का औपन्यासिक साक्षात्कार' भी है, जिसमें रुद्र काशिकेय कृत 'बहती गंगा', तथा

शिवप्रसाद मिश्र की हिन्दुस्तान के इतिहास के तीन मुख़्तलिफ़ काल-खंडों का आह्वाहन करती उपन्यास-त्रयी : 'गली आगे मुड़ती है', 'नीला चाँद', और 'वैश्वानर' का मोहक परिचय मिलता है। अलावा इसके काशी/बनारस पर हिंदी की ढेर-सारी मशहूर कविताएँ हैं, श्रीकांत वर्मा, त्रिलोचन, ज्ञानेन्द्रपति, राजेश जोशी से लेकर मोहन राणा तक की।

लखनऊ एक शहर ही नहीं एक तहज़ीब का भी नाम है। अमृतलाल नागर ने इस नवाबी शहर के बारे में लिखा हैः 'लखनऊ, संयुक्त प्रांत में एक निराला नगर है। बिजली की प्रभा से आलोकित संध्या 'शाम-ए-अवध' की सम्पूर्ण प्रतिभा है। प य में क्रय-विक्रय चल रहा है, नीचे और ऊपर से सुंदिरयों का कटाक्ष, चमकीली वस्तुओं का झलमला, फूलों के हार का सौरभ और रसिकों के वसन में लगे हुए गंध से खेलता हुआ मुक्त पवन — यह सब मिलकर एक उत्तेजित करनेवाला मादक वायुमंडल बन रहा है। मंगलदेव अपने साथी के साथ मैच खेलने लखनऊ आया था। उसका स्कूल आज विजयी हुआ है। कल वे लोग बनारस लौटेंगे। आज सब चौक में अपना विजयोल्लास प्रकट करने के लिए और उपयोगी वस्तु क्रय करने के लिए एकत्र हुए हैं।' हिंदी के बहुत से नामवर लेखकों की जन्मभूमि ही नहीं कर्मभूमि और संघर्षों का गवाह रहा है यह नवाबी शहर। अमृतलाल नागर, रघुवीर सहाय, कुँवरनारायण, मनोहरश्याम जोशी सरीखे लेखकों के साहित्य में लखनऊ अपने अलग ही तेवर में मौजूद है। अब नवाबी शहर है तो वहाँ तवायफ़ें भी होंगी। उमराव जान हिंदुस्तान की तवायफ़ संस्कृति में एक मिथक बन चुकी हैं या बना दी गई हैं। उनका ताल्लुक़ लखनऊ से ही था। मुज़फ़्फ़र अली द्वारा उन पर बनाई गई फ़िल्म की इसमें उल्लेखनीय भूमिका रही। बहुत कम लोग जानते हैं कि उमराव जान अदा ने अपनी आत्मकथा भी लिखी है, जिसका हिंदी या हिंदुस्तानी में अनुवाद रघुपति सहाय फ़िराक़ सहित कई लेखकों ने किया है। संगम पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद से 1961 में प्रकाशित *उमराव जान अदा* की मूल भूमिका मिर्ज़ा हादी अली रुस्वा ने लिखी थी और इसका अनुवाद किया था रघुपति सहाय फ़िराक़ ने। इसमें उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में बदलते लखनऊ और फ़ैज़ाबाद जैसे शहरों की कहानी एक वेश्या की ज़िन्दगी के माध्यम से बयान की गई है। बक़ौल अनुवादक — रघुपति सहाय 'फ़िराक़'ः

> आज से सौ बरस पहले का लखनऊ और वह सैंकड़ों छोटे-बड़े लखनऊ, जो आधे हिन्दुस्तान के शहर-शहर, क़स्बे-क़स्बे में बसे हुए थे, यानी लखनऊ की ज़िन्दगी, उनकी जीती जागती तस्वीर इस उपन्यास में खींची गई है..। बुआ हुसैनी की आढ़त, दिल-फेंक रईसों और नवाबों को ज़िन्दगियों की झलक, रंडियों की दुनिया में रहने वालों की चलती-फिरती तस्वीरें, रस्म-रिवाज, चाल-ढाल, और उमराव जान 'अदा' की बचपन से लेकर अधेड़ उम्र तक आपबीती ऐसी चीज़ें हैं, जो एक सिद्धहस्त कलाकार ही हमें दे सकता था। उर्दू में यह उपन्यास एक अमर रचना या क्लैसिक का स्थान पा चुकी है...

हिंदी के कई बड़े लेखकों ने अपने संस्मरणों, यात्रा वृत्तांतों में उत्तरी हिंदुस्तान के इस नवाबी शहर से जुड़ी अपनी यादों को समेटने की कोशिश की है। हमारी निगाह सबसे पहले पड़ती है भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की लिखी 'लखनऊ, जबलपुर, सरयूपार की यात्रा' शीर्षक यात्रा वृत्तांत पर। उनका यह यात्रा वृत्तांत ब्रजरत्न दास द्वारा संपादित *भारतेन्दु ग्रन्थावली* खंड-3 में संकलित है। मनोहरश्याम जोशी का लखनऊ पर लिखा संस्मरणात्मक निबंध किस्तों में कथाकार अखिलेश के संपादन में प्रकाशित पत्रिका *तद्भव* में 'लखनऊ मेरा लखनऊ' शीर्षक से छपा था, बाद में इसे 2002 में वाणी प्रकाशन, दिल्ली ने पुस्तकाकार छापा। इसमें उन्होंने अपने कॉलेज के दिनों के लखनऊ के सांस्कृतिक, बौद्धिक समाज को बड़े ही खिलंदड़ाना अंदाज़ में पेश किया है। इसके अलावा 'रघुवीर सहाय के बहाने एक संस्मरण' मनोहर श्याम जोशी का एक उल्लेखनीय लेख है जिसमें उन्होंने रघुवीर सहाय के बहाने लखनऊ और मुख्यतः पचास और साठ के दशकों की दिल्ली की यादों को समेटने की कोशिश की है। ये कुछ बानगी हैं लखनऊ पर लिखे गये कुछ नामवर क़िस्म के लेखकों की उल्लेखनीय कृतियों की। लखनऊ के कॉफ़ी हाउस भी ज़ाहिरा तौर पर वहाँ के साहित्यकारों के लेखकीय अच्छे-बुरे कारनामों के गवाह होते हैं। यही वजह है कि शहर के कॉफ़ी हाउसों पर हिंदी में काफ़ी साहित्य रचा गया है। इनमें भगवती प्रसाद बाजपेयी का

व्यंग्य संग्रह *कॉफ़ी हाउस के क़हक़हे* भी है जिसमें लखनऊ के कॉफ़ी हाउस की बदलती फ़िज़ा और वहाँ की बिगड़ती रंगत को व्यंजित किया गया गया है। व्यंग्यकार के अनुसार लखनऊ के इस कॉफ़ी हाउस का एक गौरवशाली इतिहास रहा है। यहाँ कभी यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, हेमवतीनंदन बहुगुणा, अमृतलाल नागर सरीखी आला हस्तियाँ आ कर बैठती थीं और शामे-अवध का लुत्फ़ उठाया करती थीं लेकिन आज वहाँ आनेवाले सफ़ेदपोश लोगों और छुटभैये नेताओं में न तो वह लखनवी तहज़ीब रह गयी है और न बौद्धिक बातचीत का वह स्तर।

मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल हिंदी प्रदेश का एक ऐसा शहर है जो आज़ादी के बाद अपने सांस्कृतिक सरोकारों के लिए बड़ी तेज़ी से आगे आया है। मध्य प्रदेश का सागर शहर भी अपने साहित्यिक सरोकारों के लिए मशहूर है। कभी भारत भवन, भोपाल के निदेशक रहे हिंदी के कवि, अलोचक अशोक वाजपेयी लंबे समय तक सागर में भी रहे हैं। 'अपने शहर को याद करते हुए' लेख में अशोक वाजपेयी उस सागर को याद करते हैं, जो उनका अपना शहर है और जिसे उन्होंने खो दिया है, गँवा दिया है और जिसे अकसर दूसरे शहरों में खोजते फिरते हैं। यह नॉस्टैल्जिया इसलिए क्योंकि अशोक वाजपेयी को कवि और प्रशासक होने का संस्कार यहीं मिला। उनके गुरु लक्ष्मीधर आचार्य से। उनमें साहित्यिक सरोकार और शास्त्रीय संगीत में रुचि भी यहीं विकसित हुई। शायद इसीलिए अशोक वाजपेयी के मन में सागर के प्रति गहरी कृतज्ञता का भाव है,'क्योंकि यहाँ तालाब भी था, प्रकृति भी थी, अंग्रेज़ी राज की स्मृतियाँ भी थीं और स्वतंत्रता संग्राम के लोग भी थे। विचित्र-सा छोटा शहर था लेकिन अद्‌भुत शहर था। ऐसे शहर बार-बार नहीं मिलेंगे...।' सागर के साहत्यिक, सांस्कृतिक अखाड़ों-आयोजनों की भी मज़ेदार चर्चा है। उनका यह लेख सुधीश पचौरी द्वारा संपादित किताब *अशोक वाजपेयी—पाठ कुपाठ* में संकलित है।

हिंदी क्षेत्र में आगरा भी एक महत्वपूर्ण शहर है। नज़ीर अकबराबादी, मिर्ज़ा ग़ालिब, भक्त कवि सूरदास, पं. बनारसीदास जैन, रांगेय राघव, रामविलास शर्मा, अमृतलाल नागर, राजेन्द्र यादव जैसे लेखक आगरा से ही आते हैं। अब यदि इतने कद्दावर लेखक यहाँ से ताल्लुक़ रखते हैं तो स्वाभाविक रूप से उस शहर के इर्द-गिर्द भी उन्होंने क़लम चलाई होगी। जहाँ तक हिंदी की साहित्यिक कृतियों में आगरा का सवाल है घोषित तौर पर हिंदी की पहली आत्मकथा है 'अर्द्धकथानक' और आत्मकथाकार हैं पं. बनारसी दास जैन। सन् 1641 में प्रकाशित इस आत्मकथा में उन्होंने आगरा शहर की तत्कालीन कहानी भी लिखी है। इसके अलावा राजेन्द्र यादव के संपादन में दिल्ली से प्रकाशित हिंदी की साहित्यिक पत्रिका *हंस* में प्रकाशित 'काँटे की बात' स्तम्भ में राजेन्द्र यादव ने 'इतना कायर हूँ कि उत्तर प्रदेश हूँ' शीर्षक अपनी टिप्पणी में अपनी जन्मभूमि आगरे को कुछ-कुछ भावुकतापूर्वक याद करते हुए लिखा हैः

> मैं भी ग़ालिब की तरह आगरा से दिल्ली आया — वाया कलकत्ता। आगरा छोड़े तीस-पैंतीस साल हो गये। प्रायः जाना नहीं होता — इतना पास है। बड़े शहरों में अपने सबसे निकट पड़ोसी से मिले महीनों निकल जाते हैं : कभी भी मिल लेंगे। लेकिन कहीं भी रहूँ — आगरा मेरे साथ रहता है। वहाँ का कुछ भी सुनते या पढ़ते हुए दिल में — 'कुछ-कुछ' होने लगता है। एक ही भाव है, सुनो, वृक्ष महाराज, किसी देश में रहें, किसी वेश में रहें पुष्प तो हम तुम्हारे ही कहलाएँगे..। कहाँ है किसी दूसरे शहर के पास यह गरिमा।
>
> ताज, सीकरी, सिकंदरा... अकबर, शाहजहाँ और सूरजमल, जलेबी, कचौड़ी, पेठा... ये गलियाँ, बाज़ार और चौबारे... वे सुअर घूरे और मक्खियाँ, डेढ़ सौ सालों से शिक्षा और कला का केंद्र, वे गलियाँ, गालियाँ, नंगई और बेशर्मियाँ... कुश्तियाँ, तैराकी, पतंगबाज़ी और कबूतरबाज़ियाँ... नज़ीर, ग़ालिब और सूरदास, रांगेय राघव, रामविलास और अमृतलाल नागर... अजी लखनऊ, इलाहाबाद और बनारस... सब साले फ़ौक्स हैं उसके सामने, एक-डेढ़ स्टेशन के शहर, हमारे यहाँ शहर के अंदर पाँच-पाँच स्टेशन... भगवान कृष्ण और डाकू मानसिंह की लीलास्थली... ऐसे ही नहीं आया था अकबर अपनी दिल्ली छोड़कर राजधानी बनाने. बनाते न फाफामऊ में।

> जी हाँ, है पागलख़ाना हमारे यहाँ। तो। बड़ों-बड़ों के दिमाग ठीक करके रख देते हैं। और सौ बातों की एक बात, उम्मीदवारों की संख्या से उत्साहित पागलखाना तो आप भी बनवा लेंगे, ताजमहल आपका बाप बनवाकर देगा।

भारतेन्दु युग के एक चर्चित लेखक हैं पं. प्रताप नारायण मिश्र। उन्होंने *ब्राह्मण* पत्रिका के खंड 5, सं. 1 और 2 (15 अगस्त और 15 सितम्बर) में 'कन्नौज में तीन दिन' शीर्षक से एक लेख लिखा था। उसमें उन्होंने शहर की गौरक्षिणी सभा में दिए गए अपने भाषण, रेल यात्रा आदि का वर्णन किया है। इसके अलावा उस युग की मशहूर साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' के अगस्त 1927 अंक में रघुवीर सिंह का एक लेख 'शिमला के पत्र' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। पत्र शैली में लिखा गया यह एक रिपोर्ताज कहा जा सकता है।

राहुल सांकृत्यायन लिखित *मेरी जीवन यात्रा* पाँच खंडों की आत्मकथा है जिसमें अनेक शहरों की तत्कालीन कहानियाँ मिलती हैं। इसी तरह रामवृक्ष बेनीपुरी की *पेरिस नहीं भूलता*, उपेन्द्रनाथ अश्क का *मंटो मेरा दुश्मन* आदि रचनाएँ भी शहर पर केंद्रित हैं। घनश्याम सेठी का 27 दिसंबर 1964 के *धर्मयुग* में प्रकाशित 'शहर एक बस्तियाँ दो' इस विषय पर एक उल्लेखनीय लेख है।

कमलेश्वर के संपादन में किताबघर, नई दिल्ली से 1997 में प्रकाशित 'मेरा हमदम मेरा दोस्त' में संकलित कई संस्मरणों में शहर के संदर्भ आए हैं। इस लिहाज़ से अज्ञेय की 'अरे यायावर रहेगा याद' द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गई किताब है जिसमें बर्मा से काबुल तक की यात्रा का वर्णन है।

कमलेश्वर द्वारा लिखित *जो मैंने जिया, आधारशिलाएँ–1* लेखक से जुड़े लोगों, जगहों और माहौल का बेहद बेलौस और उपादेय संस्मरण है। हालाँकि यह काफ़ी कुछ आत्मपरक है पर इसमें साठ-सत्तर के राजनीतिक-सांस्कृतिक परिदृश्य का जीवंत चित्रण भी है। साथ ही इसमें नई कहानी की तिकड़ी, उनके आपसी अंतर्संबंध, उनके संघर्ष, उनकी कोशिशें, उनके क़हक़हे, उनकी कमज़ोरियाँ, उनकी कबाब पार्टियाँ, उनके प्रकाशन, ड्राइ-डे के दिन अमूमन पूरी दिल्ली के लेखकों की परिक्रमा का भी ज़िक्र है। मूलतः इलाहाबाद व दिल्ली पर केंद्रित है यह कृति। इसमें शहरों से लेखकों के नाज़ुक रिश्ते पर कमलेश्वर की यह टिप्पणी उल्लेख्य हैः

> ... इस दौर में लेखक की हालत झुग्गी-झोंपड़ी वालों जैसी है। वह अलीगढ़, इलाहाबाद, पटना, लखनऊ, बीकानेर, भोपाल जैसी बस्तियों को अपनी झुग्गी-झोंपड़ियों में बसाता है, पर उसे उजाड़ दिया जाता है। वह सांस्कृतिक दुनिया बनाता है, पर उसे जला दिया जाता है। उसी के लिए उसका देश पराया बना दिया जाता है। लेखक का शहर कभी बस ही नहीं सकता...

इसी तरह अपनी बहुचर्चित कृति *चीड़ों पर चाँदनी* शीर्षक अपने यात्रा वृत्तांत में निर्मल वर्मा ने युरोपीय शहरों पर 'ब्रेख़्त' और 'एक उदास नगर' (बर्लिन), 'पेरिस-ए स्टिल लाइफ़' (पेरिस), 'वियना' (वियना) आदि लेखों को शामिल किया है। दूसरी तरफ़ 'चीड़ों पर चाँदनी' में लेखक ने अपने गृह शहर शिमला में बिताए बचपन की यादों को बड़े ही नॉस्टैल्जिक तरीक़े से समेटने की कोशिश की है।

शहर पर केंद्रित साहित्य की चर्चा के क्रम में कुछ पत्रिकाओं के शहर पर केंद्रित चुनिंदा अंकों पर पर भी ध्यान दिया जाना ज़रूरी है। शहरी अध्ययन के लिहाज़ से यह महत्वपूर्ण है। मिसाल के तौर पर *कल्पना* के काशी अंक (2005) को देखा जा सकता है, जिसका संपादन कवि प्रयाग शुक्ल ने किया है। यह काशी पर केंद्रित किंचित दुर्लभ सामग्री से सज्जित एक नायाब और सुरुचिपूर्ण संकलन है। बनारस से वाबस्ता मिथक, जनश्रुतियाँ, इतिहास, नये-पुराने संस्मरण, तरह-तरह के आस्वाद, तेवर, शैलियाँ, विधाएँ, गंगा, साहित्य, संगीत, धर्म, गलियाँ, पंडे-पुजारी, वेश्याएँ, विभूतियाँ, यहाँ की वनौषधियाँ, पान लगाने-खिलाने की कला से चाय पिलाने के चलन तक का सफ़र — सब कुछ है इसमें। इसी तरह अभी हाल में *लोकमत समाचार* द्वारा 2 खंडों में प्रकाशित दीपावली विशेषांक 2004 को भी इसी संदर्भ में देखा जा सकता है। पत्रिका का पहला खंड 'अपना जनपद, अपने लोग' और दूसरा 'हिंदी समाज का अंतर्द्वन्द्व' है। शहर के साहित्य के लिहाज़ से पहला खंड इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि 'महानगर-माला' खंड में मुंबई, भोपाल, हैदराबाद, पटना, तिरुवनंतपुरम, औरंगाबाद, पुणे और नागपुर पर क्रमशः सूरज प्रकाश, सत्येन कुमार, राजेश जोशी, वेणु गोपाल, प्रेमकुमार मणि, रति सक्सेना, चंद्रकांत पाटिल,

दामोदर खडसे, भास्कर लक्ष्मण भोले और बसंत त्रिपाठी के लेख हैं। इसके अलावा इसमें बिलासपुर, कोल्हापुर, भुसावल, जबलपुर, गया, अमरावती, उज्जैन, जमशेदपुर, अकोला और सागर जैसे अपेक्षाकृत छोटे शहरों पर भी लेख हैं।

शहर से संबंधित वेबसाइटें:

1. http://www.webdunia.com/literature/remembering/ एक ऐसा वेब-स्रोत है जहाँ कुछ नामीगिरामी लेखक-लेखिकाओं के संस्मरण शामिल हैं, कुछ पूर्व-प्रकाशित कुछ अप्रकाशित आत्मकथाएँ भी।
2. http://www.webdunia.com/literature/atmakatha/ वेबसाइट भी उपयोगी है।
3. http://www.abhivyakti-hindi.org/nagarnama
4. http://www.abhivyakti-hindi.org/sansmaran/nagarnama/index.htm पूरी दुनिया के छोटे-बड़े शहरों पर केन्द्रित छोटे-छोटे संस्मरणात्मक आलेखों का बेतरतीबवार लेकिन निरंतर वर्धमान और दिलचस्प संकलन।